शीघ्र ईश्वरप्राप्ति
ॐ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

शीघ्र ईश्वरप्राप्ति

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निवेदन

गुरूपूर्णिमा के पावन पर्व पर 'शीघ्र ईश्वरप्राप्ति' नाम की पुस्तक आपके करकमलों तक पहुँचाते हुए आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।

पुंसां कलिकृताना दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान्।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान पुरूषोत्तमः।।

'कलियुग के अनेको दोष हैं। सब वस्तुएँ दोषित हो जाती हैं, स्थानों में भी दोष की प्रधानता आ जाती है। परंतु जब भगवान पुरूषोत्तम हृदय में आ विराजते हैं, तब उनकी संन्निधि मात्र से ही सबके सब दोष नष्ट हो जाते हैं।'

(श्रीमद् भागवतः 12.3.45)

श्रीमद् भागवत की यह उक्ति अपने इसी जीवन में अनुभूत हो सकती है। पूज्यश्री की पापनाशिनी विद्युन्मय अमृतवाणी में से संकलित इस सामग्री में पूज्यश्री के ऐसे पावन प्रेरक संकल्प निहित हैं कि इसके वाचन-मनन से कलियुग के दोषों को निवारण होने लगता है, हृदय पवित्र होने लगता है। पवित्र हृदय में परमात्मा को आमंत्रित एवं प्रतिष्ठित करने की लालसा एवं योग्यता आती है। इस प्रकार साधक आगे चलकर मुक्तिलाभ प्राप्त कर सकता है। फलतः उसका जीवन तनावरहित, अहंकाररहित, सुखमय, शांतिमय, आनन्दमय अर्थात् परमात्मामय बनता है। उसके दिव्य जीवन की सुहास से आसपास का वातावरण भी पुलकित और पावन होता है।

इस भगवन्निष्ठा में दृढ़स्थित पुरूष जहाँ भी रहता है, जहाँ भी जाता है, जो भी बोलता है, जो भी करता है सब भगवन्मय होता है। उसकी उपस्थिति मात्र से मनुष्य को बल, उत्साह, सांत्वना, सुख और ज्ञान मिलता है। हृदय परमात्मा के प्रेम से भर जाता है।

आओ, हम इस दिव्यातिदिव्य अमृतवाणी को अपने में अवतरित करें। अपने जीवन को उन्नत बनायें, कृतार्थता का अनुभव करें और हम पर जो गुरू, शास्त्र एवं संतों का ऋण है उससे उऋण होने की भावना को पुष्ट करें, आत्म-परमात्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर बनें और दूसरों को भी इसी कल्याणमय पथ की पुण्यमयी यात्रा कराने का पुण्यलाभ प्राप्त करें।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

शीघ्र ईश्वरप्राप्ति

बहुत से रास्ते यूँ तो दिल की तरफ जाते हैं।
राहे मोहब्बत से आओ तो फासला बहुत कम है।

जीवत्मा अगर परमात्मा से मिलने के लिए तैयार हो तो परमात्मा का मिलना भी असंभव नहीं। कुछ समय अवश्य लगेगा क्योंकि पुरानी आदतों से लड़ना पड़ता है, ऐहिक संसार के आकर्षणों से सावधानीपूर्वक बचना पड़ता है। तत्पश्चात् तो आपको रिद्धि-सिद्धि की प्राप्ति होगी, मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगेगी, वाकसिद्धि होगी, पूर्वाभ्यास होने लगेंगे, अप्राप्य एवं दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्य एवं सुलभ होने लगेंगी, धन-सम्पत्ति, सम्मान आदि मिलने लगेंगे।

उपरोक्त सब सिद्धियाँ इन्द्रदेव के प्रलोभन हैं।

कभी व्यर्थ की निन्दा होने लगेगी। इससे भयभीत न हुए तो बेमाप प्रशंसा मिलेगी। उसमें भी न उलझे तब प्रियतम परमात्मा की पूर्णता का साक्षात्कार हो जाएगा।

दर्द दिल में छुपाकर मुस्कुराना सीख ले।
गम के पर्दे में खुशी के गीत गाना सीख ले।।

तू अगर चाहे तो तेरा गम खुशी हो जाएगा।
मुस्कुराकर गम के काँटों को जलाना सीख ले।।

दर्द का बार-बार चिन्तन मत करो, विक्षेप मत बढ़ाओ। विक्षेप बढ़े ऐसा न सोचो, विक्षेप मिटे ऐसा उपाय करो। विक्षेप मिटाने के लिए भगवान को प्यार करके 'हरि ॐ' तत् सत् और सब गपशप का मानसिक जप या स्मरण करो। ईश्वर को पाने के कई मार्ग हैं लेकिन जिसने ईश्वर को अथवा गुरूतत्त्व को प्रेम व समर्पण किया है, उसे बहुत कम फासला तय करना पड़ा है।

कुछ लोग कहते हैं- "बापू ! इधर आने से जो मुनाफा मिलता है उसे यदि समझ जाएँ तो फिर वह बाहर का, संसार का धन्धा ही न करें।"

कोई पूछता हैः "तो संसार का क्या होगा ?"

बड़ी चिन्ता है भैया ! तुम्हें संसार की ? अरे यह तो बनाने वाले, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जानें। तुम तो अपना काम कर लो।

कोई पूछता हैः "स्वामी जी ! आप तन्दरूस्ती के ऐसे नुस्खे बताते हैं कि कोई बीमार ही न पड़े। तो फिर बेचारे डॉक्टर क्या खाएँगे ?"

अरे भैया ! पहले इतने डॉक्टर नहीं थे तब भी लोग खा रहे थे। वे डॉक्टरी नहीं करते थे, दूसरा काम करते थे। या अभी तो तुम तंदुरुस्त रहो और डॉक्टर लोग जब भूखों मरें तब तुम बीमार हो जाना।

कोई पूछता हैः "सब अगर मुक्ति चाहेंगे तो संसार का क्या होगा ?"

अरे, फिर नये जन्म होंगे और संसार की गाड़ी चलती रहेगी, तुम तो मुक्त हो जाओ।

कोई पूछता हैः "हम बीमार न पडेंगे तो दवाइयों का क्या होगा ?"

अरे, दवाइयाँ बनना कम हो जाएगी और क्या होगा ? हम गुनाह न करें तो जेल खाली पड़ी रह जाएगी इसीलिए गुनाह कर रहे हैं। यह कैसी बेवकूफी की बात है ! अरे सरकार को तो आराम हो जाएगा बेचारी को।

ऐसे ही हम साधन भजन करके इन विकारों से, अपराधों से जब बच जाते हैं तो नरक थोड़ा खाली होने लगता है। यमराज व देवताओं को आराम हो जाता है।

दूसरों को आराम पहुँचाना तो अच्छी बात है न कि अपने को या दूसरों को सताना। अतः आप सत्कार्यों के माध्यम से स्नेहमयी वाणी व प्रेमपूर्वक व्यवहार को अपने में उतारकर प्रसन्नात्मा होकर स्वयं भी स्व में प्रतिष्ठित होकर आराम प्राप्त करने की चेष्टा करना व हमेशा औरों को खुशी मिले ऐसे प्रयास करना।

जीना उसी का है जो औरों के लिये जीता है।

ॐ नारायण..... नारायण...... नारायण....

किसी इन्सान का धन-सम्पदा, रूपया पैसा चला जाए अथवा मकान-दुकान चली जाए तो इतना घाटा नहीं क्योंकि वे तो आँख बन्द होते ही चले जाने वाले हैं लेकिन श्रद्धा चली गई,

साधन भजन चला गया तो फिर कुछ भी शेष नहीं रहता, वह पूरा कंगाल ही हो जाता है। ये चीजें चली गई तो तुम इसी जन्म में दो चार वर्षों तक कुछ कंगाल दिखोगे लेकिन भीतर का खजाना चला गया तो जन्मों तक कंगालियत बनी रहेगी।

इसलिए हे तकदीर ! अगर तू मुझसे धोखा करना चाहती है, मुझसे छीनना चाहती है तो मेरे दो जोड़ी कपड़े छीन लेना, दो लाख रूपये छीन लेना, दो साधन छीन लेना, गाड़ियाँ मोटरें छीन लेना लेकिन मेरे दिल से भगवान के गुरू के दो शब्द मत छीनना। गुरू के लिए, भगवान के लिए, साधना के लिए जो मेरी दो वृत्तियाँ हैं - साधन और साध्य वृत्तियाँ हैं, ये मत छीनना।

एक प्रौढ़ महिला भोपाल में मेरे प्रवचन काल के दौरान मुझसे मिलने आई। वह बोलीः "बाबाजी ! आप कृपया मेरे स्कूल में पधारिये।"

वह बंगाली महिला स्कूल की प्रधानाध्यापिका थी।

मैंने कहाः "बहन ! अभी समय नहीं है।"

इतना सुनते ही उस महिला की आँखों से आँसू टपक पड़े। वह कहने लगीः "बाबा जी ! मैं आनन्दमयी माँ की शिष्या हूँ।"

मैंने महसूस किया है कि शिष्य की नजरों से जब गुरू का पार्थिव शरीर चला जाता है तो शिष्य पर क्या गुजरती है। मैं जानता हूँ। मैंने तुरन्त उस महिला से कहाः

"माई ! मैं तुम्हारे स्कूल में भी आऊँगा और घर भी आऊँगा।" उसे आश्चर्य हुआ होगा परन्तु मैं उसके घर भी गया और स्कूल में भी गया।

शिष्य को ज्ञान होता है कि गुरू के सान्निध्य से जो मिलता है वह दूसरा कभी दे नहीं सकता।

हमारे जीवन से गुरू का सान्निध्य जब चला जाता है तो वह जगह मरने के लिए दुनिया की कोई भी हस्ती सक्षम नहीं होती। मेरे लीलाशाह बापू की जगह भरने के लिए मुझे तो अभी कोई दीख नहीं रहा है। हजारों जन्मों के पिताओं ने, माताओं ने, हजारों मित्रों ने जो मुझे नहीं दिया वह हँसते हँसते देने वाले उस सम्राट ने अपने अच्युत पद का बोध व प्रसाद मुझे क्षणभर में दे डाला।

गुरू जीवित है तब भी गुरू, गुरू होते हैं और गुरू का शरीर नहीं होता तब भी गुरू गुरू ही होते हैं।

गुरू नजदीक होते हैं तब भी गुरू गुरू ही होते हैं और गुरू का शरीर दूर होता है तब भी गुरू दूर नहीं होते।

गुरू प्रेम करते हैं, डाँटते हैं, प्रसाद देते हैं, तब भी गुरू ही होते हैं और गुरू रोष भरी नजरों से देखते हैं, ताड़ते हैं तब भी गुरू ही होते हैं।

जैसे माँ मिठाई खिलाती है तब भी माँ ही होती है, दवाई पिलाती है तब भी माँ ही होती है, तमाचा मारती है तब भी माँ होती है। माँ कान पकड़ती है तब भी माँ होती है, ठण्डे पानी से

नहलाती है तब भी माँ होती है और गरम थैली से सेंक करती है तब भी वह माँ ही होती है। वह जानती है कि तुम्हें किस समय किस चीज की आवश्यकता है।

तुम माँ की चेष्टा में सहयोग देते हो तो स्वस्थ रहते हो और उसके विपरीत चलते हो तो बीमार होते हो। ऐसे ही गुरू और भगवान की चेष्टा में जब हम सहयोग देते हैं तो आत्म-साक्षात्कार का स्वास्थ्य प्रकट होता है।

बच्चे का स्वास्थ्य एक बार ठीक हो जाए तो दोबारा वह पुनः बीमार हो सकता है लेकिन गुरू और भगवान द्वारा जब मनुष्य स्वस्थ हो जाता है, स्व में स्थित हो जाता है तो मृत्यु का प्रभाव भी उस पर नहीं होता। वह ऐसे अमर पद का अनुभव कर लेता है। ऐसी अनुभूति करवाने वाले गुरू, भगवान और शास्त्रों के विषय में नानकजी कहते हैं-

नानक ! मत करो वर्णन हर बेअन्त है।

जिस तरह भगवान के गुण अनन्त होते हैं उसी प्रकार भगवत्प्राप्त महापुरूषों की अनन्त करूणाएँ हैं, माँ की अनन्त करूणाएँ हैं।

एक बार बीरबल ने अपनी माँ से कहाः "मेरी प्यारी माँ ! तूने मुझे गर्भ में धारण किया, तूने मेरी अनगिनत सेवाएँ की। मैं किसी अन्य मुहूर्त में पैदा होता तो चपरासी या कलर्क होता। तू मुझे राजा होने के मुहूर्त में जन्म देना चाहती थी लेकिन विवशता के कारण तूने मंत्री होने के मुहूर्त में जन्म दिया। कई पीड़ाएँ सहते हुए भी तूने मुझको थामा और मेरे इतने ऊँचे पद के लिए क्या क्या कष्ट सहे ! माँ ! मेरी इच्छा होती है कि मैं अपने शरीर की चमड़ी उतरवाकर तेरी मोजड़ी बनवा लूँ।

माँ हँस पड़ीः "बेटे ! तू अपने शरीर की चमड़ी उतरवाकर मेरी मोजड़ी बनवाना चाहता है लेकिन यह चमड़ी भी तो मेरे ही शरीर से बनी हुई है।"

बच्चा कहता हैः "मेरी चमड़ी से तेरी मोजड़ी बना दूँ। लेकिन उस नादान को पता ही नहीं कि चमड़ी भी तो माँ के शरीर से बनी है। ऐसे ही शिष्य भी कहता है कि मेरे इस धन से, मेरी इस श्रद्धा से, इस प्रेम से, इस साधन से गुरूजी को अमुक-अमुक वस्तु दे दूँ लेकिन ये साधन और प्रेम भी गुरूजी के साध्य और प्रेम से ही तो पैदा हुए हैं !

चातक मीन पतंग जब पिया बिन नहीं रह पाय।
साध्य को पाये बिना साधक क्यों रह जाय।।

समुद्र जैसी गंभीरता और सुमेरू जैसी दृढ़ता दीक्षित साधक को पार पहुँचाने में समर्थ है। साधक उसके आविष्कारों तथा रिद्धि-सिद्धियों में आकर्षित नहीं होता है तो और अधिक सूक्ष्मतर स्थिति में पहुँचता है। सूक्ष्मतर अवस्था में भी जो उपलब्धियाँ हैं - दूरश्रवण, दूरदर्शन, अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि जो सिद्धियाँ हैं इनमें भी जो नहीं रूकता वह सूक्ष्मतम सचराचर में व्यापक परमेश्वर का साक्षात्कार करके जीवन्मुक्त हो जाता है तथा जिस पद में भगवान ब्रह्मा, विष्णु और महेश प्रतिष्ठित हैं उसका वह अनुभव कर लेता है। जैसे, पानी के एक बुलबुले में से आकाश

निकल जाए तो बुलबुले का पेट फट जाएगा। जीवत्व का, कर्त्ता का, बँधनों का, बुलबुले का आकाश महाकाश से मिल जाएगा। घड़े का आकाश महाकाश से मिल जाएगा। बूँद सिंधु हो जाएगी। ऐसे ही अहं का पेट फट जाएगा। तब अहं हटते ही जीवात्मा परमात्मा से एक हो जाएगा।

जिस तरह पानी की एक बूँद वाष्पीभूत होती है तो वह तेरह सौ गुनी अधिक शक्तिशाली हो जाती है। ऐसे ही प्राणायाम, ध्यान और जप से प्राणशक्ति, सूक्ष्म करने पर आपका मन प्रसन्न, निर्मल और सूक्ष्म होता है। प्राण एक ऐसी शक्ति है जो सारे विश्व को संचालित करती है। बीजों का अंकुरण तथा पक्षियों का किलौल प्राणशक्ति से ही होता है। यहाँ तक कि मानुषी एवं दैवी सृष्टि भी प्राणशक्ति के प्रभाव से ही संचालित एवं जीवित रहती है। ग्रह-नक्षत्र भी प्राणशक्ति से ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित होकर कार्य करते हैं अर्थात् प्राणशक्ति जितनी स्थूल होगी उतनी ही साधारण होगी और जितनी सूक्ष्म होगी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होगी।

संसार का सार शरीर है शरीर का सार इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों का सार मन है और मन का सार प्राण है। अगर प्राण निकल जाए तो तुम्हारे हाथ, पैर, आँख, कान, नाक आदि होते हुए भी तुम कुछ नहीं कर पाते। प्राण निकलने पर आदमी भीतर बाहर ठप्प हो जाता है। प्राण जितने स्वस्थ होंगे, आदमी उतना ही स्वस्थ और तंदरूस्त रहेगा। जैसे कोई रोगी अगर तरूण है तो उसका रोग शीघ्रता से दूर होगा तथा शल्यक्रिया के घाव शीघ्रता से भरेंगे। वृद्ध है तो देर से भरेंगे क्योंकि उसकी प्राणशक्ति वृद्धावस्था के कारण मंद हो जाती है। जो योगी लोग हैं, उनकी उम्र अधिक होने पर भी साधारण युवान की अपेक्षा उनकी रोगप्रतिकारक क्षमता अधिक होती है क्योंकि प्राणायाम आदि के माध्यम से वृद्धावस्था में भी वे अपनी प्राणशक्ति को जवान की भाँति सँभाले रहते हैं।

प्रत्येक धर्म के उपदेशक अथवा नेता व्यक्ति जो कि भाषण या उपदेश देते हैं अथवा प्रभावशाली व्यक्तित्व रखते हैं उनके पीछे भी प्राणशक्ति की सूक्ष्मता का ही प्रभाव रहता है।

प्राणशक्ति नियंत्रित और तालबद्ध होती है तो आपका मन प्रसन्न और नियंत्रित रहता है। जितने अशों में आपका मन नियंत्रित एवं प्रसन्न तथा प्राणशक्ति तालबद्ध रहती है उतने ही अंशों में आपके विचार उन्नत एवं व्यक्तित्व प्रभावशाली दिखता है।

बजाज कम्पनी वाले जमनादास बजाज के दामाद श्रीमन्नारायण गुजरात के गवर्नर रह चुके हैं। वे एक बार रिसर्च की दुनियाँ में बहुत सारे सुंदर आविष्कार करने वाले आइन्स्टीन से मिलने गये और उनसे पूछाः "आपकी उन्नति का क्या रहस्य है जिससे आपका विश्व के इतने आदरणीय वैज्ञानिक हो गये ?"

आइन्स्टीन ने स्नेह से श्रीमन्नारायण का हाथ पकड़ा और वे उन्हें अपने प्राइवेट कक्ष में ले गये। उस कमरे में फर्नीचर नहीं था। उसमें ऐहिक आकर्षण पैदा करके आदमी को धोखे में गुमराह करने वाले नाचगान के टी.वी., रेडियो आदि साधन नहीं थे अपितु वहाँ भूमि पर एक

साफ सुथरी चटाई बिछी थी। उस पर एक आसन था और ध्यान करने के लिए सामने दीवार पर एक प्रतिमा, मूर्ति थी। आइन्स्टीन ने कहाः

"मेरे विकास का मूल कारण यही है कि मैं प्रतिदिन यहाँ ध्यान करता हूँ।"

ध्यान से मन एकाग्र होता है। प्राण तालबद्ध चलते हैं। प्राणायाम करने से भी प्राण तालबद्ध होकर मन की एकाग्रता में वृद्धि करते हैं। दुनिया के जितने भी प्रभावशाली उपदेशक, प्रचारक आदि हो गये हैं, चाहे वे राम हों, कृष्ण हों, मोहम्मद हों, ईसा हों, कबीर हों, नानक हों, इनका प्रभाव आमजनता पर इसलिए पड़ा कि उन्होंने धारणाशक्ति का अवलम्बन, बंदगी, प्रार्थना आदि का अवलम्बन लेकर जाने-अनजाने में अपनी प्राणशक्ति का विकास कर लिया था।

भगवान सबमें उतने का उतना ही है और शरीर का मसाला भी सबके पास करीब-करीब एक जैसा ही है। रक्त, हाड-माँस, श्वास लेने के लिए नाक और देखने की आँखे ये साधन तो एक से ही हैं फिर भी एक आदमी एकाध साधारण नौकरी करना चाहता है तो उसको मिलती नहीं और दूसरा आदमी बड़ी ऊँची कुर्सी पर होकर त्यागपत्र दे देता है तो भी उसकी दूसरी ऊँची नौकरी मिल जाती है। इसमें आकाश पाताल में बैठकर देवी-देवता भाग्य में परिवर्तन नहीं करते। वह तो तुम्हारा मन जितना एकाग्र होता है तथा प्राणों की रीधम जितनी तालबद्ध होती है उतना ही व्यवहार में तुम सुयोग्य बन जाते हो।

तुलसीदास जी ने कहा हैः

को काहू को नहीं सुख दुःख करि दाता।
निज कृत करम भोगत ही भ्राता।।

मनुष्य और पशु में अगर अन्तर देखना हो तो बल में मनुष्य से कई पशु आगे हैं जैसे सिंह, बाघ आदि। मानुषी बल से इनका बल अधिक होता है। हाथी का तो कहना ही क्या ? फिर भी मनुष्य महावत, छः सौ रूपये की नौकरी वाला, चपरासी की योग्यतावाला मनुष्य हाथी, सिंह और भालू को नचाता है, क्योंकि पशुओं के शारीरिक बल की अपेक्षा मनुष्य में मानसिक सूक्ष्मता अधिक है।

मनुष्य के बच्चों में और पशुओं के बच्चों में भी यह अन्तर है कि पशु के बच्चे की अपेक्षा मनुष्य का बच्चा अधिक एकाग्र है। पशुओं के बच्चों को जो बात सिखाने में छः मास लगते हैं, फिर भी सैंकड़ों बेंत लगाने पड़ते हैं वह बात मनुष्य के बेटे को कुछ ही मिनटों में सिखाई जा सकती है। क्योंकि पशुओं की अपेक्षा मनुष्य के मन, बुद्धि कुछ अंशों में ज्यादा एकाग्र एवं विकसित है। इसलिए मनुष्य उन पर राज्य करता है।

साधारण मनुष्य और प्रभावशाली मनुष्य में भी यही अंतर है। साधारण मनुष्य किसी अधीनस्थ होते हैं जैसे चपरासी, सिपाही आदि। कलेक्टर, मेजर, कर्नल आदि प्रभावशाली पुरूष हुकुम करते हैं। उनकी हुकूमत के पीछे उनकी एकाग्रता का हाथ होता है जिसका अभ्यास उन्होंने पढ़ाई के वक्त अनजाने में किया है। पढ़ाई के समय, ट्रेनिंग के समय अथवा किसी और समय में

उन्हें पता नहीं कि हम एकाग्र हो रहे हैं लेकिन एकाग्रता के द्वारा उनका अभ्यास सम्पन्न हुआ है इसलिए वे मेजर, कलेक्टर, कर्नल आदि होकर हुकुम करते हैं, बाकी के लोग दौड़-धूप करने को बाध्य हो जाते हैं।

ऐसे ही अगले जन्म में या इस जन्म में किसी ने ध्यान या तप किया अर्थात् एकाग्रता के रास्ते गया तो बचपन से ही उसका व्यक्तित्व इतना निखरता है कि वह राजसिंहासन तक पहुँच जाता है। सत्ता संभालते हुए यदि वह भय में अथवा राग-द्वेष की धारा में बहने लगता है तो उसी पूर्व की निर्णयशक्ति, एकाग्रताशक्ति, पुण्याई क्षीण हो जाती है और वह कुर्सी से गिराया जाता है तथा दूसरा आदमी कुर्सी पर आ जाता है।

प्रकृति के इन रहस्यों को हम लोग नहीं समझते इसलिए किसी पार्टी को अथवा किसी व्यक्ति को दोषी ठहराते हैं। मंत्री जब राग-द्वेष या भय से आक्रान्त होता है तब ही उसकी एकाग्रताशक्ति, प्राणशक्ति अन्दर से असन्तुलित हो जाती है। उसके द्वारा ऐसे निर्णय होते हैं कि वह खुद ही उनमें उलझ जाता है और कुर्सी खो बैठता है। कभी सब लोग मिलकर इन्दिरा गांधी को उलझाना चाहते लेकिन इन्दिरा गाँधी आनन्दमयी माँ जैसे व्यक्तित्व के पास चली जाती तो प्राणशक्ति, मनःशक्ति पुनः रीधम में आ जाती और खोई हुई कुर्सी पुनः हासिल कर लेती।

मैंने सुना था कि योगी, जिसकी मनःशक्ति और प्राणशक्ति नियंत्रित है, वह अगर चाहे तो एक ही मिनट में हजारों लोगों को अपने योगसामर्थ्य के प्रभाव से उनके हृदय में आनन्द का प्रसाद दे सकता है।

यह बात मैंने 1960 के आसपास एक सत्संग में सुनी थी। मेरे मन में था कि संत जब बोलते हैं तो उन्हें स्वार्थ नहीं होता, फिर भला क्यों झूठ बोलेंगे ? व्यासपीठ पर झूठ वह आदमी बोलता है जो डरपोक हो अथवा स्वार्थी हो। ये दो ही कारण झूठ बुलवाते हैं। लेकिन संत क्यों डरेंगे श्रोताओं से ? अथवा उन्हें स्वार्थ क्या है ? वे उच्च कोटि के संत थे। मेरी उनके प्रति श्रद्धा थी। आम सत्संग में उन्होंने कहा थाः "योगी अगर चाहे तो अपने योग का अनुभव, अपनी परमात्मा-प्राप्ति के रस की झलक हजारों आदमियों को एक साथ दे सकता है। फिर वे सँभाले, टिकायें अथवा नहीं, यह उनकी बात है लेकिन योगी चाहे तो दे सकता है।"

इस बात को खोजने के लिए मुझे 20 वर्षों तक मेहनत करनी पड़ी। मैं अनेक गिरगुफाओं में, साधु-संतों के सम्पर्क में आया। बाद में इस विधि को सीखने के लिए मैं मौन होकर चालीस दिनों के लिए एक कमरे में बँद हो गया। आहार में सिर्फ थोड़ा-सा दूध लेता था, प्राणायाम करता था। जब वह चित्तशक्ति, कुण्डलिनी शक्ति जागृत हुई तो उसका सहारा मन और प्राण को सूक्ष्म बनाने में लेकर मैंने उस किस्म की यात्रा की। तत्पश्चात् डीसा में मैंने इसका प्रयोग प्रथम बार चान्दी राम और दूसरे चार-पाँच लोगों पर किया तो उसमें आशातीत सफलता मिली।

मैंने जब यह सुना था तो विश्वास नहीं हो रहा था क्योंकि यह बात गणित के नियमों के विरूद्ध थी। योगी अगर अपना अनुभव करवाने के लिए एकएक के भीतर घुसे और उसके चित्त में

अपना तादात्म्य स्थापित करने के लिए सूक्ष्म दृष्टि, सूक्ष्म शरीर से आए-जाए तो भी एक-एक के पास कम से कम एक-एक सेकण्ड का समय तो चाहिए। ऐसी मेरी धारणा थी। जैसे स्कूलों में हम पढ़ते हैं कि पृथ्वी गोल है, यह स्कूल और साधक की बात है, लेकिन बच्चे को समझ में नहीं आती फिर भी पृथ्वी है तो गोल। बच्चा अध्ययन करके जब समझने लगता है तब उसे ठीक से ज्ञान हो जाता है।

ऐसा ही मैंने उस विषय को समझने के लिए अध्ययन किया और चालीस दिन के अनुष्ठान का संकल्प किया तो मात्र सैंतीस दिन में ही मुझे परिणाम महसूस हुआ और उसका प्रयोग भी बिल्कुल सफल हुआ और अभी तो आप देखते ही हैं कि हजारों हजारों पर यह प्रयोग एक साथ होता ही रहता है।

हरिद्वार वाले घाटवाले बाबा कहते थेः "आत्म-साक्षात्कारी पुरूष ब्रह्मलोक तक के जीवों को सहायता करते हैं और उन्हें यह अहसास भी नहीं होने देते हैं कि कोई सहायता कर रहा है। यह भी गिनती नहीं कि उन्होंने किन-किन को सहायता की है। जैसे हजारों लाखों मील दूरी पर स्थित सूर्य की कभी इसकी गणना नहीं होती कि मैं कितने पेड़-पौधों, पुष्पों, जीव-जन्तुओं को ऐसा सहयोग दे रहा हूँ। हालाँकि सूर्य का हमारे जीवन में ऐसा सहयोग है कि अगर सूर्य ठण्डा हो गया। हम उसी क्षण यहीं मर जायेंगे। इतने आश्रित हैं हम सूर्य की कृपा पर। सूर्य को कृपा बरसाने की मेहनत नहीं करनी पड़ती। चन्द्रमा को औषधि पुष्ट करने के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता अपितु उसका स्वभाव ही है।

चन्द्रमा और सूर्य का सहज स्वभाव है लेकिन पेड़-पौधों का, जीव जंतुओं का, मनुष्यों का तो कल्याण हो जाता है। ऐसे ही आप मन और प्राणों को इतना सूक्ष्म कर दें.... इतना सूक्ष्म कर दें कि आपका जीवन बस..... जैसे बिन्दु में सिन्धु आ पड़े अथवा घड़े में आकाश आ पड़े तो घड़े का क्या हाल होगा ? ऐसे की आपके 'मैं' में व्यापक ब्रह्म आ जाये तो आपकी उपस्थिति मात्र से ही अथवा आप बोलेंगे वहाँ और जहाँ तक आपकी दृष्टि पड़ेगी वहाँ तक के लोगों का तो भला होगा ही लेकिन आप जब एकान्त में, मौन होकर अपनी मस्ती में बैठेंगे तो ब्रह्मलोक तक की आपकी वृत्ति व्याप्त हो जाएगी। वहाँ तक के अधिकारी जीवों को फायदा होगा।

जैसे बर्फ तो हिमालय पर गिरती है लेकिन तापमान पूरे देश का कम हो जाता है और त्वचा के माध्यम से आपके शरीर पर असर पड़ता है। ऐसे ही किसी ब्रह्मवेत्ता को साक्षात्कार होता है अथवा कोई ब्रह्मवेत्ता एकान्त में कहीं मस्ती में बैठे हैं तो अधिकारियों के हृदय में कुछ अप्राकृतिक खुशी का अन्दर से एक बहाव प्रस्फुरित होने लगता है। ऐसे थोड़े बहुत भी जो अधिकारी लोग हैं, आध्यात्मिक खुशी का अन्दर से एक बहाव प्रस्फुरित होने लगता है। ऐसे थोड़े बहुत भी जो अधिकारी लोग हैं आध्यात्मिक जगत के, उन्हें अवश्य ही अनुभव होता होगा कि कभी कभी एकाएक उनके भीतर खुशी की लहर दौड़ जाती है।

मन और प्राण को आप जितना चाहें सूक्ष्म कर सकते हैं, उन्नत कर सकते हैं। सूक्ष्म यानी छोटा नहीं अपितु व्यापक। अर्थात् अपनी वृत्ति को सूक्ष्म करके व्यापक बना सकते हैं। जैसे बर्फ वाष्पीभूत होकर कितनी दूरी तक फैल जाती है ? उससे भी अधिक आपके मन और प्राण को सूक्ष्म कर साधना के माध्यम से अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों में अपनी व्यापक चेतना का अनुभव आप कर सकते हैं। उस अनुभव के समय आपके संकल्प में अद्भुत सामर्थ्य आ जाएगा और आप इस प्रक्रिया से नई सृष्टि बनाने का सामर्थ्य तक जुटा सकेंगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

क्रममुक्ति और सद्योमुक्ति

मुक्ति मुख्य दो प्रकार की होती है। एक होती है क्रममुक्ति और दूसरी होती है सद्योमुक्ति। धारणा, ध्यान, भजन, जप, तप, सुमिरन, सत्संग, ब्रह्मज्ञान आदि के बाद भी जिसे सुख लेने की वासना होती है, उसकी सद्योमुक्ति नहीं होगी, क्रममुक्ति होगी। शरीर छूटेगा तो उसका अन्तःकरण चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल को लांघता हुआ अन्तवाहक शरीर से ब्रह्मलोक तक पहुँचकर वहाँ भोग-काया पाकर ब्रह्माजी के समान सुविधाएँ और भोग पदार्थ भोगता है। जब ब्रह्मा जी के कल्प का अन्त होता है तब वहाँ ब्रह्मदेवता के श्रीमुख से पुनः ब्रह्मज्ञान सुनता है। इससे उसे अपने स्वरूप का स्मरण हो जाता है और वह मुक्त हो जाता है। इसे क्रममुक्ति कहते हैं।

क्रममुक्ति भी दो प्रकार की होती हैः एक तो जीव ब्रह्मलोक में कल्प तक सुख भोगता रहे और अन्त में ब्रह्माजी जब अपनी काया विलय करना चाहते हों, जब आत्यंतिक प्रलय हो, तब उसमें उपदेश मात्र से जगकर अन्तःकरण परब्रह्म परमात्मा में लीन होता है।

दूसरी क्रममुक्ति में ऐसे लोग होते हैं, जिन्होंने साधन-भजन तो किया लेकिन किसी सुख-भोग की इच्छा रह गई तो सद्योमुक्ति नहीं हुई। वे ऊपर के लोग-स्वर्गलोक ब्रह्मलोक आदि में गये और वहाँ फिर स्मरण हुआ की सभी भोग पुनरागमन करवाने वाले हैं, मुझे तो शीघ्रातिशीघ्र अपने परमात्मपद में जागना है। ऐसे लोग फिर किसी धनवान श्रीमान और सदाचारी के कुल में जन्म लेते हैं। सब सुख-सुविधाएँ होने के बावजूद भी उनका चित्त उनमें नहीं लगता। उन्हें त्याग की एकाध बात मिल जाती है, सत्संग में विवेक, वैराग्य की बात मिल जाती है तो पिछले जन्म का किया हुआ साधन भजन पुनः जाग्रत हो जाता है और वे साधन-भजन में जुटकर यहीं पर परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करके उनकी काया जब पंचभूतों में लीन होती है तो वे परब्रह्म परमात्मा में लीन होते हैं। ये भी क्रममुक्ति में आते हैं।

त्यागो हि महत्पूज्यो सद्यो मोक्षपदायकः।

त्याग महान पूजनीय है। इससे शीघ्र मोक्ष मिलता है।

अतः इस लोक के सुख-सुविधा, भोग सब नश्वर हैं, स्वर्ग का सुख भी नश्वर है, ब्रह्मलोक का सुख भी नश्वर है..... ऐसा तीव्र विवेक जिसे होता है उसके चित्त में सांसारिक सुखों के भोग की वासना नहीं होती अपितु परमपद को पाकर मुक्त हो जाएँ, ऐसी तीव्र लालसा होती है। ऐसे महाभाग्यवान विरले ही होते हैं जो सद्योमुक्ति का अनुभव करते हैं। उन्हें किसी भी लोक-लोकांतर के सुख-वैभव की इच्छा नहीं होती है। वे साक्षात् नारायण स्वरूप हो जाते हैं।

ऐसे ज्ञानवान जो सद्योमुक्ति को प्राप्त हैं, वे अपना शेष प्रारब्ध लेना-देना, खाना-पीना इत्यादि करते हैं। किसी से कुछ लेते हैं तो उसके आनन्द के लिए किसी को कुछ देते हैं तो उसके आनन्द के लिए। वे अपने आनन्द के लिए कुछ देते-लेते हुए दिखते हैं परन्तु उनके चित्त में लेने देने का भाव नहीं रहता है। वे हँसने के समय हँसते हैं, ताड़न के समय ताड़न करते हैं, अनुशासन के समय अनुशासन करते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर सारथि बनकर अर्जुन जैसों का रथ भी चलाते हैं। ऐसे ही वे जीवन्मुक्त महापुरूष हमारे जीवनरूपी रथ का भी मार्गदर्शन करते हैं तथापि उनके चित्त में कर्तृत्व भाव नहीं आता है।

अष्टावक्र मुनि राजा जनक से कहते हैं-

अकर्तृत्वममोकृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा।
तदा क्षीणा भवन्त्येव समस्ताश्चित्तवृत्तयः।।

जब पुरूष अपने अकर्तापन और अभोक्तापन को जान लेता है तब उस पुरूष की संपूर्ण चित्तवृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं।

(अष्टावक्र गीताः 18.59)

अर्थात् अपनी आत्मा को जब अकर्ता-अभोक्ता जानता है तब उसके चित्त के सारे संकल्प और वासनाएँ क्षीण होने लगती हैं।

हकीकत में करना-धरना इन हाथ पैरों का होता है। उसमें मन जुड़ता है। अपनी आत्मा अकर्ता है। जैसे बीमार तो शरीर होता है परन्तु चिन्तित मन होता है। बीमारी और चिन्ता का द्रष्टा जो मैं है वह निश्चिन्त, निर्विकार और निराकार है। इस प्रकार का अनुसंधान करके जो अपने असली मैं में आते हैं, फिर चाहे मदालसा हो, गार्गी हो, विदुषी सुलभा हो अथवा राजा जनक हो, वे जीते जी यहीं सद्योमुक्ति का अनुभव कर लेते हैं।

सद्योमुक्ति का अनुभव करने वाले महापुरूष विष्णु, महेश, इन्द्र, वरूण, कुबेर आदि के सुख का एक साथ अनुभव कर लेते हैं क्योंकि उनका चित्त एकदम व्यापक आकाशवत् हो जाता है और वे एक शरीर में रहते हुए भी अनन्त ब्रह्माण्डों में व्याप्त होते हैं। जैसे घड़े का आकाश एक घड़े में होते हुए भी ब्रह्माण्ड में फैला है वैसे ही उनका चित्त चैतन्य स्वरूप के अनुभव में व्यापक हो जाता है।

रामायण में आता है-

चिदानंदमय देह तुम्हारी।

विगतविकार कोई जाने अधिकारी।।

रामजी को विरले ही जान पाते हैं। भगवान राम के बाहर के श्रीविग्रह का दर्शन तो कैकेयी, मन्थरा को हो सकता है, लेकिन रामतत्त्व को तो कोई विरला योगी महापुरूष ही समझ पाता है। ऐसे ही अपने बाहर के, एक दूसरे के शरीरों क दर्शन तो हो जाता है लेकिन अपना जो वास्तविक 'रामतत्त्व' है, 'मैं' तत्त्व है, जहाँ से 'मैं' स्फुरित होता है वह चिदानन्दमय है, निर्विकार है। उस पर जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि का प्रभाव नहीं पड़ता।

बीमार शरीर होता है, वास्तव में तुम कभी बीमार नहीं होते। तुम कभी चिन्तित नहीं होते, चिन्तित मन होता है। तुम कभी भयभीत नहीं होते, मन में भय आता है। तुम कभी शोक नहीं करते, शोक तुम्हारे चित्त में आता है लेकिन तुम अपने को उसमें जोड़े देते हो।

एक बार काशी नरेश ने संत कबीर के पैर पकड़ कर याचना कीः

"महाराज ! मैं कई वर्षों से कथा-वार्ता सुनता हूँ, राज्य के ऐशो-आराम को अन्त में नाशवान समझता हूँ फिर भी मुझे भगवान का, आत्मभाव का अनुभव नहीं हो रहा है, बन्धन से मुक्ति का अनुभव नहीं हो रहा है। लगता है कि मर जाऊँगा, पराधीन हो जाऊँगा। मैं कथा तो सुनता हूँ और मेरा मन संसार के विषय विकारों में भी नहीं है। मेरे यहाँ एक पंडित जी कथा करते हैं लेकिन मुझे अपने देशातीत, कालातीत स्वरूप का अनुभव नहीं होता। कृपया आप मुझे मुक्ति का अनुभव करवाइये।

कबीरजीः "हम कल तुम्हारे दरबार में आएँगे। तुम कथा कितने बजे सुनते हो ?"

काशीनरेशः "प्रातः आठ से दस बजे तक पंडित जी कथा सुनाते हैं।"

कबीरजीः "अच्छा ! देखो मुझसे उपदेश प्राप्त करना है तो मेरी आज्ञा का पालन करने के लिए तुम्हें वचनबद्ध होना होगा, तभी काम बनेगा।"

काशीनरेशः "महाराज ! मैं कल तो क्या सदा के लिए आपकी आज्ञा का पालन करने को वचनबद्ध होता हूँ।"

काशी नरेश ने सोचा कि अगर महापुरूष की आज्ञा मानने से चौरासी लाख जन्म-मृत्यु का बँधन टूट जाता है तो उनकी आज्ञानुसार यदि हम एक जीवन बिता दें तो घाटा क्या है ? उन्होंने कबीर जी से कहाः

"मैं आजीवन आपकी आज्ञा का दास बन कर रहूँगा।"

कबीरजीः "अच्छा ! मैं कल आऊँगा।"

कबीर जी काशीनरेश के दरबार में पहुँचे। राजा उस समय कथा सुन रहा था। कबीर जी को देखकर वह उठ खड़ा हुआ।

कबीर जी पूछते हैं- "राजा ! कल का वादा ?"

राजाः "आप जो आज्ञा करेंगे, वही होगा।"

कबीर जीः "मंत्रियों से कह दो कि अब सिंहासन पर मैं बैठता हूँ। अब मेरी आज्ञा चलेगी, तुम्हारी नहीं।"

राजा ने मंत्रियों से कह दियाः "अब इनकी ही आज्ञा मानें, मेरी नहीं।"

कबीर जी सिंहासन पर आसन जमाकर बैठ गये। फिर आज्ञा दी।

"राजा को दाहिनी ओर के खम्भे से बाँध दिया जाए।"

मंत्रियों ने आदेश का पालन कर राजा को बाँध दिया। कबीर जी ने दूसरा आदेश दियाः

"पंडित जी को बाँयी ओर के खम्भे से बाँध दो।"

एक खम्भे से पंडित को व दूसरे से राजा को बाँध दिया गया। अब कबीर जी ने कहाः

"राजन ! पंडित को आज्ञा करो कि यह तुमको छुड़वा दे।"

राजाः "महाराज ! पंडित मुझे नहीं छुड़ा सकेंगे।"

कबीर जीः "क्यों ?"

राजाः "इसलिए वे स्वयं बँधे हुए हैं।"

तब कबीर जी कहते हैः "राजन ! तुम इतना तो समझते हो कि वे स्वयं बँधे हुए हैं, इसलिए तुम्हें नहीं छुड़ा सकते। ऐसे ही शरीर को मैं मानते हैं, अन्तःकरण को मैं मानते हैं तथा दक्षिणा के लिए सत्संग सुनाते हैं तो बँधे हुए हैं। उन बेचारे को ज्ञान तो है नहीं, वे तुम्हें कैसे ज्ञान कराएँगे ?"

बन्धे को बन्धा मिले, छूटे कौन उपाय।
सेवा कर निर्बन्ध की, पल में दे छुड़ाय।।

जो इन्द्रियों से, शरीर से, मन और कर्म से, कर्तृत्वभाव से नहीं बँधे हुए हैं, ऐसे ब्रह्मवेत्ता की आज्ञा मानो..... उनकी सेवा करो।

अष्टावक्र निर्बन्ध थे और जनक अधिकारी थे तो बँधन से छूट गये। शुकदेव जी निर्बन्ध थे और परीक्षित की सात दिन में मृत्यु होने वाली थी..... उसे दूसरे कोई आकर्षण नहीं दिखे और वासना भी नहीं थी..... इसलिए हो गई मुक्ति।

ज्ञानवान, निर्बन्ध, असंग, निर्विकार, व्यापक, सच्चिदानंद, नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त स्वभावयुक्त, महापुरूषों का चिन्तन अथवा उनकी चर्चा करने से, उनकी स्नेहमयी चेष्टाओं का, वार्ताओं का बयान करने अथवा अहोभाव करने से चित्त पावन हो जाता है तथा उनका अहोभाव करने से हृदय भक्तिभाव एवं पवित्रता से भर जाते हैं।

राजा खटवांग बड़े ही प्रतापी और पुण्यात्मा राजा थे। उनका नाम सुनकर शत्रुओं का हृदय काँपने लगता था। देवासुर संग्राम में इन्द्र को कोई सुयोग्य सेनापति नहीं मिला तो उन्होंने भूमण्डल के महाप्रतापी राजा खटवांग को सेनापति का पद सँभालने हेतु अनुरोध किया था। उल्लेखनीय है कि देवताओं का एक दिन मनुष्य का एक वर्ष होता है। अतः कई मानवीय वर्ष

तक राजा खटवाँग देवताओं की सहायता करते रहे। खटवाँग ने कई वर्षों तक देव-दानव युद्ध में सेनापति का पद सँभाला। अश्विनीकुमार जैसे योग्य सेनानायक मिल जाने पर देवेन्द्र ने कहाः

"राजन ! आपका मंगल हो। कल्याण हो। आपने हमें बहुत सहयोग दिया। आपने देवलोक में कई दिव्य वर्ष बिताये तो मृत्युलोक में आपके पुत्र परिवार और राज्य व्यवस्था आदि सब काल के कराल मुख में जाकर खत्म हो चुके हैं। अतः आप मुक्ति के सिवाय हमसे जो कुछ भी माँगेगे, हम आपको सेवा के रूप में प्रदान कर सकेंगे।"

खटवाँग ने देवेन्द्र से कहाः

"मेरे माँगने से जो मिलेगा उसे भोगते-भोगते हमारे कुटुम्ब परिवार के सदस्य समय की धारा में उसी प्रकार बह गये जैस नदी की धारा में तिनके एवं रेत बह जाती है। आप तो कृपा करके अब इतना बतलाइये कि मेरी आयु कितनी शेष है।"

दो मुहूर्त यानि तीन घण्टे। देवताओं का एक दिव्य वर्ष मनुष्य के 360 वर्षों के बराबर होता है। इस तरह देवताओं के तीन घण्टे यानि मानुषी जीवन की कुछ जिन्दगी तो मिली।

खटवाँग ने कहाः "अगर दो मुहूर्त ही आयुष्य है तो क्या माँगूगा और क्या माँगूगा ? क्योंकि कुछ भी तो स्थिर नहीं है।"

अच्युतपद की प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर खट्वाँग शिवजी के चरणों में गये और ज्ञान का उपदेश पाकर मोक्ष की प्राप्ति व मुक्ति का अनुभव कर लिया । महिम्न स्तोत्र में भी राजा खटवाँग का उल्लेख आता है।

मुक्ति का अनुभव करने में कोई अड़चन आती है तो वह है यह जगत सच्चा लगना तथा विषय, विकार व वासना के प्रति आसक्ति होना। यदि सांसारिक वस्तुओं से अनासक्त होकर 'मैं कौन हूँ ?' इसे खोजें तो मुक्ति जल्दी मिलेगी। निर्वासनिक चित्त में से भोग की लिप्सा चली जाएगी और खायेगा, पियेगा तो औषधवत्.... परंतु उससे जुड़ेगा नहीं।

एक बार रंग अवधूत महाराज (नारेश्वरवाले) के पास बलसाड़ के कुछ भक्त केसर आम ले गये और भारी प्रशंसा करने लगे। ऐसी प्रशंसा करने लगे कि मानो उसके आगे स्वर्ग का अमृत भी कुछ नहीं। वे बोलेः

"बापू ! यह प्रथम दर्जे का मीठा आम है।"

अवधूत कहते हैं- "तुम श्रद्धा-भक्ति से देते तो शायद एकाध टुकड़ा मैं खा लेता लेकिन तुमने इतनी बड़ाई की, फिर भी मेरे मुँह में अभी पानी नहीं आया। अगर पानी आ जाएगा तो जरूर खाऊँगा, अन्यथा नहीं।

हम किसी के हाथ में नींबू देखते हैं तो मुँह में पानी आ जाता है, कहीं हलवा बन रहा है तो पानी आ जाता है। ये आदतें बाहर की तुच्छ चीजों में ऐसे रस टपका देती है कि अन्दर का रस कितना है इसका पता ही नहीं चलता।

महादेव गोविंद रानडे की पत्नी ने उन्हें दो तीन आम काट कर दिये। रानडे ने एक फाँक खायी और कहाः

"नौकरों को, बच्चों को और पड़ोस के बच्चों को बाँट दो।"

पत्नी ने पूछाः "आम अच्छे नहीं लगे क्या ? बहुत मीठे और स्वादिष्ट तो थे।"

"इसलिए तो कहता हूँ कि सबको बाँट दो।"

"इतने अच्छे और स्वादिष्ट हैं फिर सबको क्यो ?"

"जो अच्छा लगेगा उसे अधिक खाएँगे तो आसक्ति होगी। अच्छी चीज बाँटने की आदत डालो ताकि अच्छे में अच्छा हृदय बनना शुरू हो जाए।"

हम लोग क्या करते हैं कि मिर्च-मसालेयुक्त, खट्टे-मीठे व्यंजन अथवा मिठाइयों के दो कौर अधिक खाते हैं, ठूँस-ठूँसकर खाते हैं और जब अजीर्ण होता है तो कहते हैं- 'मुझे किसी ने कुछ कर दिया...... मुझे भूत का चक्कर है।'

भूत नहीं है भाई ! गैस है गैस।

किसी वक्त गोला इधर दौड़ता है तो किसी वक्त उधर.....। आवश्यकता से अधिक भोजन करने से अजीर्ण हो जाता है। अजीर्ण में पानी औषधि है और भोजन पच जाये उसके बाद पानी बलप्रद है, लेकिन भूख अत्यधिक लगी हो और पानी पी लिया तो वह जहर हो जाता है। शास्त्रों में भी आया हैः

अजीर्णे भेषजं वारि, जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि, भोजनान्ते विषप्रदम।।

'अजीर्ण होने पर जल पीना औषधि का काम करता है। भोजन के पच जाने पर जल पीना बलदायक होता है। भोजन के मध्यकाल में जल पीना अमृत और भोजन के अन्त में जल पीना पाचन क्रिया के लिए हानिकारक है।"

पानी तो वही का वही लेकिन समयानुसार उपयोग का असर पृथक-पृथक होता है। ऐसे ही मन तो वही, शरीर भी वही लेकिन किस समय शरीर से, मन से क्या काम लेना है इस प्रकार का ज्ञान जिसके पास है वह मुक्त हो जाता है। अन्यथा कितने ही मंदिर-मस्जिदों में जोड़ो एवं नाक रगड़ो, दुःख और चिन्ता तो बनी ही रहेगी।

कभी न छूटे पिण्ड दुःखों से।
जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं।।

यह आत्मा ही ब्रह्म है, ऐसा ज्ञान, वास्तविक ज्ञान निर्वासनिक होने से होता है।

सुख बाँटने की चीज है तथा दुःख को पैरों तले कुचलने की चीज है। दुःख को पैरों तले कुचलना सीखो, न ही दुःख में घबराहट।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।

एक सामान्य योगी होता है जो ध्यान, समाधि आदि करके शांति व आनंद का अनुभव करता है। दूसरे होते हैं अभ्यास योगी। ये आनन्द का अनुभव करते हुए ऊपर आते हैं तो इनका हृदयकमल खिलता है। कभी भी गोता मारते हैं और शांत हो जाते हैं, लेकिन जो सुख-दुःख के समय भी विचलित न हो, अपने आत्मा-परमात्मा में टिका रहे वह गीता के मत में परम योगी है। उसका चित्त सुख-दुःख के आकर्षण में प्रवाहित न होकर सम रहता है। ऐसे योगी नित्य अपने प्रेमस्वरूप परमात्मा को, ईष्ट को, गुरू को स्नेह करते हैं और उन्हें यह नया रस प्राप्त होता है जिसके सम्मुख संसार का साम्राज्य तो क्या, इन्द्र का वैभव भी कुछ नहीं।

अतः आप भी मन में गांठ बाँध लें। सुख-दुःख में सम रहते हुए, सासांरिक आकर्षणों में प्रवाहित होते लोगों की दौड़ में सम्मिलित न होकर 'मुझे तो सत्य-स्वरूप ईश्वरीय आत्मसमता में रहना है' इस हेतु नित्य प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठकर, सूर्योदय से पहले स्नानादि करके शुद्ध होकर शांत बैठो। अपनी त्रुटियों और कमजोरियों को याद करके 'हरि ॐ' गदा मारकर उन्हें भगाकर सोऽहम्..... शिवोऽहम् स्वरूप में स्वयं को प्रतिष्ठित करो।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

अविचल आत्मसुख

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिऽनोजुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।

'हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक तक के सभी लोक पुनरावर्ती हैं, परंतु हे कौन्तेय ! मुझे प्राप्त होने पर पुनर्जन्म नहीं होता।'

(भगवदगीताः 8.16)

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि प्राकृत जगत में इस लोक से लेकर ब्रह्मलोक तक के सबके सब लोक के जो सुख-वैभव हैं, उन्हें भोगने के उपरान्त बारम्बार जन्म-मृत्यु रूपी क्लेश सहते हुए इस जीव को माता के गर्भ में आना पड़ता है किन्तु मुझ चैतन्य स्वरूप को प्राप्त व्यक्ति पुनः गर्भावास को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसका संसार में पुनर्जन्म नहीं होता।

जैसे स्वप्न में मिली हुई सजा जागृत अवस्था में नहीं रहती, दूध में से घी निकलने के बाद वह दूध में नहीं मिलता अपितु पृथक ही रहता है, लकड़ी जल जाने के बाद वह अग्निरूप हो जाती है और लकड़ी का कहीं नामोनिशान नहीं रहता है, उसी प्रकार संसारस्वप्न में से जो जीव जाग जाता है उसे फिर संसार स्वप्न की कैद में, माता के गर्भ में आने का दुर्भाग्य नहीं होता।

जो सपने सिर काटे कोई।

बिन जागे दुःख दूर न होई।।

स्वप्नावस्था में कोई हमारा सिर काटे तो उसका दुःख जागे बिना दूर नहीं होता।

एक संत ने मुझसे कहाः "उक्त पंक्ति तुलसीदासजी ने लिखी तो है लेकिन सपने में किसी ने हमारा सिर काटा हो और दूसरा कोई मनुष्य हमारा सिर जोड़ दे तो दुःख दूर हो जाएगा।"

मैंने कहाः "दुःख दूर नहीं होगा क्योंकि जुड़ा हुआ सिर होने से जब-जब इसकी याद आएगी तब-तब काटने वाले के प्रति द्वेष की भावना उत्पन्न होगी और साधना के मार्ग में रूकावट आयेगी। आँख खुलेगी तभी दुःख दूर होगा नहीं तो जोड़ने वाले के प्रति राग और काटनेवाले के प्रति द्वेष का दुःख तो रहेगा ही।"

तमाम प्रकार के सृष्टि के प्रकोप, तमाम प्रकार के बम भी यदि एक व्यक्ति पर गिरते हैं तो मात्र व्यक्ति के नश्वर शरीर का ही विनाश होता है। परन्तु व्यक्ति की आत्मा कभी नष्ट नही होती, ऐसे तुम अमर चैतन्य आत्मा हो।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

हे मानव ! तू सनातन है, मेरा अंश है। जैसे मैं नित्य हूँ वैसे ही तू भी नित्य है। जैसे मैं शाश्वत हूँ वैसे ही तू भी शाश्वत है। परन्तु भैया ! भूल सिर्फ इतनी हो रही है कि नश्वर शरीर को तू मान बैठा है। नश्वर वस्तुओं को तू अपनी मान बैठा है। लेकिन तेरे शाश्वत स्वरूप और मेरे शाश्वत सम्बन्ध की ओर तेरी दृष्टि नहीं है इस कारण तू दुःखी होता है।

उत्तिष्ठत जागृत। उठ ! जाग !!

वास्तव में मनुष्य पहले जागता है फिर उठता है, लेकिन श्रीकृष्ण कहते हैं- "पहले अपनी तुच्छ मान्यताओं से उठ और चल, जागृत हो। किस स्थान पर जा ? आत्मज्ञानी संतों के पास जा, जो तुझे आत्मोपदेश देंगे, आत्मप्रसाद देंगे और उस प्रसाद से तेरे सारे दुःख दूर हो जाएँगे।"

जो तत्त्वदर्शी महापुरूष हैं, जिनको भगवान का तात्त्विक स्वरूप दिखता है अथवा जो भगवान और अपने बीच की दूरी को पूर्णतः मिटा चुके हैं ऐसे पुरूषों के पास जा।

जिस प्रकार अज्ञानी का चित्त संकल्प, विकल्प और अज्ञान से भरा रहता है उस प्रकार ज्ञानी का चित्त इनमें प्रवाहित नहीं होता अपितु ज्ञान के प्रसाद से पावन होकर आकाशवत् होता है।

जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य दो पैसे की वस्तुओं के पीछे अपना चित्त बिगाड़ देता है उस प्रकार तू नश्वर वस्तुओं के पीछे अपना जीवन बरबाद मत करना।

तू अजर, अमर आत्मा-परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करके यहीं पर मुक्ति का अनुभव कर ले भैया !

प्रारंभ में दिये हुए श्लोक में पहला चरण सकाम भक्तों की बात बतलाता है और दूसरा चरण निष्काम भक्तों की बात बतलाता है।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

ब्रह्मलोक तक के लोकों में जो सकाम भाव से भक्ति करता है वह स्वर्ग अथवा अन्य लोक-लोकान्तर में जाकर अपने पुण्यों के क्षीण होने तक मौज करके पुनः माता के गर्भ में जाता है लेकिन-

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।

जो निष्काम भाव से मुझे प्राप्त होता है, जिसमें भोगवासना की इच्छा नहीं, स्वर्ग के सुख की तनिक भी इच्छा नहीं, ब्रह्मलोक तक के मौज मजे मारने की इच्छा नहीं, परन्तु जो शाश्वत सुख में, अमर पद में विश्वास रखता है ऐसे लोगों का कभी पुनरागमन नहीं होता।

शरीर तन्दुरूस्त हो, सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपना राज्य हो, पत्नी आज्ञाकारिणी एवं मधुरभाषिणी हो, पुत्र आज्ञाकारी हो तथा मंत्री व नौकर-चाकर वफादार हों तो यह मानुषी सुख की पराकाष्ठा कहलाती है। उसकी अपेक्षा सौ गुना सुख गन्धर्वों को मिलता है। गन्धर्वों के विमान संकल्पों से चलते हैं और वे गुरूत्वाकर्षण की सीमा से भी बाहर जा सकते हैं।

गन्धर्वों से सौ गुना अधिक सुख मर्त्य देवों को मिलता है। मर्त्य देव उन्हें कहा जाता है जो इस लोक में तप, यज्ञ, पुण्य आदि करके मृत्यु के बाद देवता बने हैं और स्वर्ग का सुख भोगते हैं। जब उनका पुण्य नष्ट हो जाता है तब उन्हें पुनः मृत्युलोक में आना पड़ता है।

इन मर्त्य देवों से भी सौ गुना अधिक सुख आजान देवों को मिलता है। आजान देव उन्हें कहा जाता है जो कल्प के आदि में देवता बने हैं और कल्प के अन्त तक देवता बने रहेंगे, तत्पश्चात् दूसरे कल्प में उन्हें भी मृत्युलोक में आना पड़ेगा। इन आजान देवों से भी सौ गुना अधिक सुख देवताओं के राजा इन्द्र का माना गया है लेकिन उस इन्द्र को भी कभी दैत्यों का संकट आता है तो कभी विश्वामित्र जैसे तपस्या करके नाक में दम कर देते हैं।

इन्द्र के सुख से सौ गुना अधिक सुख ब्रह्मलोक का माना गया है और ब्रह्मलोक के सुख से भी अनन्त गुना अधिक सुख भगवत्प्राप्त, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरूषों का माना गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि परमोच्च प्राकृत लोक अथवा देवलोकों में प्रवेश करने वाले भी जन्म-मृत्यु के चक्र के आधीन बने रहते हैं, उससे मुक्त नहीं हो पाते लेकिन आत्मज्ञानी, तत्त्वज्ञ, ब्रह्मवेत्ता महापुरूषों का सुख अनंत है, अपार है, अगाध है, अविनाशी है। अनन्त ब्रह्म और अनन्त ब्रह्माण्ड समाप्त हो जाये तो भी यह आत्मज्ञान का सुख, परमात्मप्राप्ति का सुख कभी नष्ट नहीं होता, अक्षुण्ण बना रहता है।

आत्मलाभात् परं लाभं न विद्यते।
आत्मसुखात् परं सुखं न विद्यते।।

आत्मलाभ से बढ़कर कोई लाभ नहीं, आत्मसुख से बढ़कर कोई सुख नहीं और आत्मज्ञान से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। आत्मज्ञान की थोड़ी सी वार्ता भी अगर सुनने को मिल जाती है तो मात्र इससे ही मनुष्य के कई जन्मों के पाप-ताप निवृत्त होने लगते हैं, सहज में शांति व तनावरहित अवस्था आने लगती है। जहाँ आत्मज्ञान की चर्चा होती है, आत्मज्ञानी महापुरूषों के

नजदीक हम रहते हैं वहाँ हमारे चित्त के विकार, मोह, ममता, काम, क्रोध, भय, शोक, ये सारे नियंत्रित होने लगते हैं।

तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे ही रहो,
महफिल का रंग बदल जाएगा....
गिरता हुआ दिल संभल जाएगा।

काम-क्रोध में, लोभ-मोह में, भय शोक में हमारा दिल हमारे विचार आदि गिरते रहते हैं और आत्मज्ञानी महापुरूष की हाजरी मात्र से वे गिरने से थम जाते हैं।

सत्संग में बैठने मात्र से, आत्मज्ञान का श्रवण करने मात्र से ही पापों का नाश हो जाता है। चित्त प्रसन्न होता है, ज्ञान की वृद्धि सहज में होती है तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, में हमारा जो आसक्तियुक्त स्वभाव है, आसक्ति करने वाला चित्त है वह भी स्थिर होने लगता है। इसी कारण साधक कहता है कि गुरूदेव ! आप केवल हमारे बीच बैठ ही रहिए क्योंकि आपकी उपस्थिति मात्र से ही हमें अनेकानेक अनुभूतियाँ होने लगती हैं।

मोरारजी देसाई कहते हैं- "मैं कलेक्टर से लेकर प्रधानमंत्री तक के पद पर गया और अनेकानेक अनुभव किये लेकिन रमण महर्षि के चरणों में बैठने से जिस सुख और शांति का अनुभव हुआ उस प्रकार का आनंद और सुखदायी अनुभूति और कहीं भी नहीं हुई। रमण महर्षि के पास ऐहिक सुविधा से युक्त कुछ भी नहीं था। उनके वहाँ नीचे जमीन पर ही बैठना पड़ता था। बैठे-बैठे संत को अपलक निहारते-निहारते जिस शांति का अनुभव करते हैं, जिस सुख की अनुभूति करते हैं ऐसा सुख प्रधानमंत्री पद तक पहुँचने पर भी नहीं मिला।"

जिन महापुरूष के हृदय में आत्मलाभ होता है, उनके चरणों में बैठने मात्र से, उनका सत्संग सुनने मात्र से, उनके दर्शन मात्र से अथवा महापुरूष जहाँ भजन करते हों ऐसी जगह की यात्रा करने से हमें इतना अधिक लाभ होता है।

ऐसे महापुरूषों की सेवा से जन्म, मृत्यु एवं गर्भावास का दुःख दूर होता है। उनकी सेवा यह नहीं कि उन्हें फल-फूल भेंट कर दिया, पैर दबा दिये....नहीं।

वे चाहते सब झोली भर लें।
निज आत्मा का दर्शन कर लें।।

वे दूसरा कुछ भी नहीं चाहते। भगवान प्रेम के भूखे होते हैं। वे मोहनथाल के भूखे हैं ऐसा कभी सुना है आपने ? किसी दिन पुजारी कहे कि भगवान को रबड़ी पसंद है तो समझ लीजिए कि पुजारी को रबड़ी पसंद है। मंदिर के भगवान ने तो कभी किसी से कुछ नहीं माँगा। इसी तरह **हृदयमंदिर के भगवान जिसमें प्रकट हुए हैं वे महापुरूष भी कुछ माँगते नहीं अपितु ऐसा देते हैं कि कभी खत्म न हो।** वे तो ऐसा अनुभव करवाते हैं कि जिसके आगे सम्पूर्ण विश्व व स्वर्ग के सुख वैभव भी तुच्छ हो जाते हैं।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।

'मामुपेत्य' का अर्थ है कि, मेरे दर्शन हो जाए, मेरे स्वरूप का बोध हो जाय तथा मुझमें प्रवेश हो जाए। श्रीकृष्ण जहाँ से मैं बोल रहे हैं, वहीं से तुम भी मैं बोल रहे हो लेकिन श्रीकृष्ण अपने मैं को जानते हैं और तुम अपने मैं से अनभिज्ञ हो इसलिए इसे जानने के लिए श्रीकृष्ण तुम्हें आमंत्रित कर रहे हैं।

कितना सरल है.....! पूरे विश्व का ज्ञान मिल जाये, जगत की वस्तुएँ मिल जाएँ, जगत की वाह-वाही मिल जाए लेकिन 'तुम कौन हो' इसका ज्ञान न मिले और इसमें विश्रांति न मिले तो सारा मिला हुआ एक दिन ठन-ठन पाल.....।

एक मजेदार किस्सा बतलाता हूँ-

एक श्रीमति के श्रीमान का नाम था ठनठनपाल। विवाहोपरांत उस श्रीमती को बच्चे, बूढ़े सभी 'मिसेज ठनठनपाल' के नाम से पुकारते थे। उसने समझ लिया कि यह सब मेरे पति के इस नाम के कारण चिढ़ाते हैं। एक दिन उसने परेशान होकर अपने पति से कहाः

"आप अपना नाम बदल डालो।"

पति ने कहाः "मैंने आज ही नाम बदल लिया और कल फिर कोई तुझे उस नाम से चिढ़ाने लगेगा तो तू फिर मुझे अपना नाम बदलने के लिए कहेगी। इससे अच्छा यह है कि तू ही मेरा नाम ढूँढ दे।"

अन्ततः किसी रविवार के दिन मिसेज ठनठनपाल ने अपने पति का नया नामकरण दिन रखा। वह पति का नया नाम ढूँढने को निकली। रास्ते में गोबर ढूँढने वाली गरीब बाई से उसका नाम पूछा तो उसने बतायाः "मेरा नाम लक्ष्मी है लक्ष्मी।"

वह कुछ आगे बढ़ी। सब्जी मंडी में भिखमंगा भीख माँग रहा था। कहीं से पाँच दस पैसे, तो कहीं से आलू टमाटर आदि.....। उससे नाम पूछाः

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

उस भिखमंगे ने कहाः "मेरा नाम जगपाल है, जगपाल।"

वह आश्चर्य करती हुई घर लौट रही थी तो रास्ते में शवयात्रा जा रही थी। उसने लोगों से पूछाः "कौन मर गया ?"

किसी ने बतायाः "अमरसिंह मर गया है अमर सिंह।"

वह घर पहुँची। सहेलियाँ और उसके पति के दोस्त नया नाम सुनने को उत्सुक थे। उसने घर पहुँचते ही सबसे कहाः

गोबर ढूँढत है लक्ष्मी, भीख माँगे जगपाल।
अमरसिंह तो मरत है, अच्छा मेरा ठनठनपाल।।

मेरा ठनठनपाल ही अच्छा है, दो हजार कमाता है।

नाम तो रख दिया अमुक-अमुक भाई लेकिन दिल में आत्म-साक्षात्कार की योग्यता होने के बाद भी यदि विषय, विकार, काम, क्रोध आदि से आसक्ति नहीं मिटी तो कहना ही पड़ेगा-

नाम बड़ा किस काम का, जो किसी के काम न आये।
सागर से नदियाँ भली, जो सबकी प्यास बुझाए।।

ब्रह्मलोक तक जाओ और पुण्यों का क्षय होने पर वापस आओ इससे उचित होगा कि मनुष्य जन्म में ही आत्मज्ञान प्राप्त कर लो ताकि पुनः जन्म-मरण के चक्कर में फँसना ही न पड़े।

देवदुर्लभ मनुष्य देह में जो मनुष्य ऐसी वैसी तुच्छ बातों में अथवा राग-द्वेष में स्वयं को बरबाद करता है उसे तुलसीदास जी 'आत्महत्या कहते हैं। वह अपनी आत्मा का घात करता है।

आज का इन्सान अपनी आत्मा को तो पहचानता नहीं लेकिन उसे रूपयों-पैसों तथा पद प्रतिष्ठा के लिए स्पर्धा करना आता है कि उसके पास दस हजार का हीरा है तो मैं बीस हजार का पहन कर दिखला दूँ। लेकिन जो अखिल ब्रह्माण्ड का हीरा है उसे प्राप्त कर दिखला और तेरा बेड़ा पार कर ले भैया....!

जिसे पुनरागमन नहीं करना है, उसे गीता के इस श्लोक पर अच्छी तरह मनन करना चाहिए। जिसे जगत की नश्वरता और परमात्मा की शाश्वतता का ज्ञान नहीं है, समझ नहीं है, उसे जगत के सारे ही पदार्थों की समझ हो तो भी वह नासमझी की समझ है।

राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् लन्दन गये थे तब लोगों ने उन्हें वहाँ के सारे आविष्कार दिखाये। पानी के भीतर यात्रा करने वाली पनडुब्बी दिखलाई, आकाश में तीव्र गति से उड़नेवाला विमान दिखलाया तथा अन्य कई आविष्कार दिखलाये।

डॉ. राधाकृष्णन् दार्शनिक थे। उन्होंने कहाः "तुमने पक्षियों की तरह आकाश में उड़ना तो सीख लिया है, पनडुब्बी के आविष्कार से मछली की भाँति पानी में दौड़ना भी सीख लिया है लेकिन अभी भारत के मनिषियों की भाँति आत्म-साक्षात्कार कर लेने का आविष्कार तुम्हारा बाकी है।"

इटली में मुसोलिनी के यहाँ भारत के प्रतिनिधि के रूप में ओंकारनाथ गये थे। मुसोलिनी ने उन्हें भोजन दिया। भोजन करते समय वार्तालाप के दौरान मुसोलिनी ने ओंकारनाथ से प्रश्न कियाः

"तुम्हारे भारत में ऐसा क्या है कि एक ग्वाला गायों के पीछे जाता है और बाँसुरी बजाता है तो लोग उसे देखकर आनन्दविभोर हो जाते हैं ? भारत के लोग उसके गीत गाते नहीं थकते और प्रति वर्ष जन्माष्टमी के उत्सव पर, 'कृष्ण कन्हैयालाल की जय' का सब गुँजन करते हैं ! आखिर ऐसा क्यों होता है ?"

ओंकारनाथ को लगा कि उस बेचारे को अभी खबर नहीं कि मनुष्य को क्या चाहिए। मनुष्य को आनन्द चाहिए... सुख चाहिए और यह सुख शुद्ध रूप से प्राप्त हो, निर्विकारी हो तो फिर कहना ही क्या ? मनुष्य परिश्रमवाले और पराधीन सुखों को त्याग कर परिश्रम रहित तथा स्वतंत्र रूप से प्राप्त सुखों की ओर आकर्षित होता है। यह अपना सब का अनुभव होगा।

परिश्रम रहित स्वाधीन सुख का नाम है भक्ति और योग।

अत्यधिक परिश्रम करके संसार की वस्तुएँ लाकर उनका भोग करें फिर सुख की प्राप्ति की इच्छा करें, बीड़ी सिगरेट आदि पीकर खों-खों करें, फिर वापस सुलगावें तो दुःख ही मिलता है, परन्तु यदि भक्ति, ज्ञान आदि की थोड़ी-सी किरण मिल जाय तो.....

दिले तस्वीर है यार,
जबकि गर्दन झुका ली, और मुलाकात कर ली।
वो थे न मुझसे दूर, न मैं उनसे दूर था।
आता न था नजर तो नजर का कसूर था।।

जिसको ऐसी अनुभूति हो जाती है, ऐसे शाश्वत सुख को मनुष्य पहचान जाता है, उसे जहाँ जरूरत पड़ती है वहाँ गोता मार लेता है। घर का खजाना है।

मुसोलिनी को अपने घर के इस खजाने की खबर न थी। ओंकारनाथ ने भोजन के दौरान ही एक प्रयोग किया। भोजन की थाली में रखे गये दो चम्मचों को उठाकर वे बर्तनों के साथ प्रसन्नात्मा होकर तालबद्ध तरीके से बजाते हुए श्रीकृष्ण का एक गीत गाने लगे। कुछ ही देर में भोजन करता हुआ मुसोलिनी झूमने लगा व ओंकारनाथ द्वारा चम्मचों पर तालबद्ध गीत को सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होकर नाचने लगा। फिर मुसोलिनी कहता हैः "कृपया बन्द करो।"

ओंकारनाथ कहते हैं- "मैं बजा रहा हूँ तो आपको क्या हो रहा है ? आप अपना खाना खाइये।"

तब मुसोलिनी कहता हैः "मुझसे खाया नहीं जा रहा है, भीतर कुछ हो रहा है।"

ओंकारनाथ कहते हैं- "तुम भीतर के मजे की एक किरण मात्र से मिर्च-मसालेयुक्त स्वादिष्ट वस्तुओं को भूल गये और जूठे चम्मचों को मेरे जैसे साधारण व्यक्ति द्वारा बजाने पर भी चित्तशक्ति, कुण्डलिनी शक्ति जागृत हुई तो तुम्हें खाने की अपेक्षा अन्दर का मजा अधिक आ रहा है तो जिन्होंने सदा आत्मा में रमण किया, ऐसे जीवन्मुक्त श्रीकृष्ण की आँखों से नित्य नवीन रस उछल उछल कर ग्वाल-गोपियों के समूह पर गिरता होगा तो उन्हें कितना आनन्द होता होगा। ?

तुम्हारे इस डाइनिंग रूम में तुम्हें इतना आनन्द आ रहा है..... वह भी इस छोटे से ही गीत से, तो जहाँ से गीत उत्पन्न होता है वहाँ निवास करने वाले श्रीकृष्ण की निगाहों व उनकी बँसी के नाद से ग्वाल-गोपियाँ और भारतवासी कितना आनन्द प्राप्त करते होंगे ? कैसे नाचते-झूमते होंगे ? फिर कृष्ण कन्हैयालाल की जय न करें तो क्या करें ?"

मान की, यश की और नश्वर वस्तुओं की प्रीति से मन भीतर गोता नहीं मार सकता। भीतर गोता मारने के लिए मन को उत्कंठा नहीं है। अगर उत्कंठा है तो फिर कोई कठिनाई भी नहीं है। तत्काल मुलाकात होती है, जैसे की राजा जनक को घोड़े के रकाब में पैर डालते-डालते अनुभूति हुई। परीक्षित को सात दिन में हुई।

एक बार महाराष्ट्र में कोई वैश्य एकनाथ जी महाराज के पास गया। एकनाथ जी महाराज से उसने प्रश्न कियाः

"आपमें और मुझमें क्या अन्तर है ? मेरी भी पत्नी है, पुत्र है, तथा आप भी विवाहित होकर पुत्रयुक्त हैं। हम भी कपड़े पहनते हैं, खाते पीते हैं और आप भी यही सब करते हैं। फिर भी लोग आपको भगवान के रूप में मानते हैं और हमें.....हमारी तो कोई गिनती ही नही करता। आपकी फोटो की पूजा होती है लेकिन हमारे तो सामने भी कोई आदर से देखना पसंद नहीं करता। हम उधार देते हैं तो वापस लेने जाओ तब भी खाली हाथ लौटाना पड़ता है किन्तु आप कुछ भी नहीं देते फिर भी कतारबद्ध होकर आपके श्रीचरणों में कुछ न कुछ अर्पण कर जाते हैं। आखिर ऐसा क्या है आपके पास कि आप इतने महान हैं और हम इतने सड़कछाप बन कर घूम रहे हैं ? आपमें और हममें अन्तर क्या है ?"

एकनाथ जी ने विचार किया कि यह सीधा उपदेश नहीं पचा सकता। ऑपरेशन के माध्यम से ही इसका इलाज संभव है। उन्होंने उस वैश्य से कहाः "तुम मुझसे क्या पूछते हो ? आने वाले सात दिनों में तो तुम्हारी मौत होने वाली है।"

सेठ भयभीत होकर चौंका। वह दुकान पहुँचा और बैठे-बैठे विचारने लगा कि सात दिन में मृत्यु.....? हुक्का पीना बन्द कर दिया। घर पहुँचते ही चटनी, मसालेदार खाना आदि न मिलने पर थाली आदि फेंककर वह जो चिढ़चिढा व्यवहार करता था, वह भी बन्द हो गया और दो दिनों में तो ऐसा लगने लगा था मानो दुकान पर कोई सेठ नहीं संत बैठा हो।

तीसरे और चौथे दिन तो 'माझा विट्ठला...... माझा विट्ठला' शुरू कर दिया। पत्नी विचारती है कि ये कल तक तो धमपछाड़ करते थे, प्यालियाँ-हुक्का पीते थे और उधारी वसूल करने जाते तो लड़ाई झगड़ा कर आते थे लेकिन अब तो भगत जैसे बन गये हैं !

पाँचवाँ और छट्ठा दिन बीता परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों उसकी व्यर्थ की तमाम भागदौड़ कम हो गई। उसका व्यवहार भी संत तुल्य परिवर्तित होने लगा। घर में, परिवार में, पड़ौस में, दुकान में, वसूली में, सभी में परिवर्तन हो गया क्योंकि भीतर जब परिवर्तन होता है तो बाहर सहज ही परिवर्तन प्रकट होता है।

ऐसा करते-करते छट्ठे दिन की रात आई। उस रात सोने की लिए बिस्तर लगाया। वह बिस्तर पर बैठा और 'माझा विट्ठला.... विट्ठला.... मैं जैसा-तैसा हूँ पर तेरा हूँ... विट्ठला.... विट्ठला.....! ऐसा करते करते उसे नींद आ गई। सुबह चार बजे ही उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर वह ध्यान जप आदि करने बैठ गया।

प्रातः सात बजे वह अपने परिजनों को कहता हैः

"आज तक जो भी कुछ हुआ हो, मैंने कभी तुम्हें परेशान किया हो, कुछ कहा सुना हो तो मुझे माफ कर देना। मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ और तुम मुझे छोड़ रहे हो। आज के बाद फिर हमारी मुलाकात न हो सकेगी।"

पत्नी आश्चर्यचकित होकर पूछती हैः "कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं आप ? क्या हुआ है आपको ?"

सेठ बोलाः "एकनाथ जी महाराज ने मुझे कहा था कि सातवें दिन तेरी मृत्यु होगी। छः दिन तो पूरे हो गये और आज सातवाँ दिन है। आज मैं किस समय मर जाऊँ कोई निश्चित नहीं। अतः अब एक काम करो कि मेरे लिए भूमि लीप दो, तुलसी के पत्ते मेरे मुँह में रख दो। तत्पश्चात तुम सभी गीता का पाठ और विट्ठल का कीर्तन करो।"

कुटुम्बी कहते हैं- "ऐसा दो महीने पहले होता तो हमें अधिक दुःख नहीं होता लेकिन सप्ताहभर से आप बहुत बदल चुके हो अतः अब हम आपको जाने नहीं देंगे।"

सेठ कहता हैः "परन्तु यह तुम्हारे कहने से तो होगा नहीं।"

इतने में एकनाथजी महाराज अनजाने होकर उधर घूमने निकले। उन्होंने उसके घर के आगे खड़े रहकर चिन्ताग्रस्त परिवार के सदस्यों से पूछाः

"क्या हो गया ?"

घर को लोगों ने दौड़ कर उनका चरणस्पर्श किया और निवेदन कियाः "स्वामी जी ! आपके इन भक्त ने केवल एक बार ही आपके दर्शन किये और इनका जीवन बदल गया लेकिन आज ये जा रहे हैं। कृपया इन्हें मौत से बचा लीजिए।"

एकनाथ जी ने कहते हैं- "ठहरो, रूको।"

फिर उस सेठ से पूछते हैं- "भाई ! तूने कितने झगड़े किये ? कहता था न कि रोज दो तीन झगड़े करता हूँ तो इन छः दिनों में तूने कितने किये ?"

"स्वामी जी ! एक भी नहीं।"

"क्यों ?"

"अरे ! सात दिन में तो मरना ही है फिर क्यों झगड़ा करें।"

"हुक्के कितने पिये ?"

"सब छूट गये।"

"प्यालियाँ कितनी पी ?"

"वह भी छूट गई।"

"घर में थालियाँ कितने दिन फैंकी ?"

"एक दिन भी नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मुझे दिखता था कि अब सात दिनों में मरना है फिर यह सब क्यों...?"

एकनाथ जीः "तुझे सात दिन दूर मृत्यु दिखाई दी तो तू संत जैसा हो गया। हमें तो इस शरीर की मृत्यु हमेशा दिखती है। यह साँस बाहर जाए तो वापस आएगी कि नहीं, किसको पता है ? इस कारण हमारा हृदय संत तुल्य बना है भैया !

तुझे तो सात-सात दिन दूर मृत्यु दिखी तब भी तेरे विकार दूर हुए लेकिन हमें तो रोज दिखता है कि यह नश्वर है। मैं नश्वर देह नहीं, मैं तो वह शाश्वत आत्मा हूँ जहाँ से देह की आँख को दर्शन की शक्ति, मन को मनन की शक्ति, कानों को श्रवण की शक्ति, नासिका को गंध की शक्ति, जिह्वा को स्वाद की शक्ति और बुद्धि को निर्णय करने की शक्ति मिलती है। वह आत्मा स्थिर रहती है जबकि निर्णय बदलते हैं, विचार बदलते हैं, देखने के दृश्य व सुनने के शब्द बदलते हैं फिर भी जो नहीं बदलता वह मेरा विट्ठल चैतन्य आत्मा ही मुझे सत्य लगता है। यह शरीर तो मुर्दे जैसा है जो चैतन्य की सत्ता से चलता है, फिरता है और पुनः थककर सो जाता है। सोने से इन्द्रियों को पुनः थोड़ी चेतना विशेष प्राप्त होती है इस कारण तरोताजा होकर फिर संसार में जुटता है और अपनी ऊर्जा-शक्ति को बिखेरकर है, पुनः थकता है। थकता है तो फिर सोकर चेतना ले आता है और फिर बिखेरता है, चुम्बन आदि लेने जाता है फिर बिखेरता है..... ऐसा करते करते जीवन पूरा कर देता है। इसकी अपेक्षा जहाँ से नित्य सत्ता, स्फूर्ति, चेतना मिलती है उस परमेश्वर को जागने के लिए प्रयत्न करता है तो धन्य हो जाता है। वह तो धन्य हो जाता है, जिनके ऊपर उसकी मीठी निगाह पड़ती है वे लोग भी धन्य हो जाते हैं।"

एकनाथ जी कहते हैं- "हे वैश्य ! तू बाहर का धन्धा तो कर परन्तु इसे करने की शक्ति जिस चैतन्य आत्मा विट्ठल से आती है उसे श्वासोच्छवास में भी जानने का थोड़ा धन्धा कर। हकीकत में तू मरने वाला नहीं है परन्तु यह समझने का प्रयास करना कि मरता यह शरीर है।"

मैं भी तुमसे यही कहता हूँ कि तुम्हारी मृत्यु सात दिन में ही होगी। सोमवार नहीं तो मंगलवार की होगी, मंगलवार नहीं तो बुधवार को, गुरूवार नहीं तो शुक्रवार की होगी और शनिवार नहीं तो रविवार को तो अवश्य ही होगी। इन सात में से किसी एक दिन तो जरूर ही जाना है क्योंकि आठवाँ दिन आता ही नहीं। इसलिए मौत आकर तुम्हारा शरीर निष्क्रिय कर दे उसके पहले इस शरीर को प्रदान करने वाले उस पावन परमात्मा की याद में अपने आप को लगा देना भैया.....!

दो बातन को भूल मत, जो चाहत कल्याण।
नारायण एक मोत को, दूजो श्री भगवान।।

मृत्यु और ईश्वर को जो नहीं भूलता है उसकी चेतना शीघ्र जाग्रत होती है। अतः ईश्वर और मृत्यु को मत भूलो। मृत्यु को याद करने से वैराग्य आयेगा और ईश्वर को याद करने से अभ्यास होगा।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

'हे महाबाहो ! यह मन बड़ा चंचल है और उसका निग्रह भी बड़ा कठिन है। वह तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है । परंतु हे कुन्तीनंदन ! अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसका निग्रह किया जा सकता है।'

(भगवदगीताः 6.35)

भगवान कहते हैं- "अभ्यास और वैराग्य से तू आत्मा को ग्रहण कर सकता है, पा सकता है, अनुभव कर सकता है। मन को बारम्बार ध्येय में लगाने का नाम अभ्यास है। उसमें महत्त्व और आदरबुद्धि होनी चाहिए। ऐसा करने से अभ्यास दृढ़ हो जाता है।

अभ्यास के दो भेद हैं-

सारे चिन्तनों की अपेक्षा करते हुए, उनसे उदासीन होकर अपनी मनोवृत्ति को केवल लक्ष्य की ओर ही लगाएँ।

मन जहाँ-जहाँ भी विचरण करे वहाँ सर्वत्र अपने इष्ट की सत्ता को व्याप्त देखें।

अभ्यास की सहायता के लिए वैराग्य की आवश्यकता है क्योंकि सांसारिक आकर्षणों से जितनी अधिक विरक्ति होगी मन उतना ही परमात्मा की ओर आकर्षित होगा।

इस तरह अभ्यास और वैराग्य से मन वशीभूत हो जाता है।

किसी गाँव से कुछ दूर एक महात्मा का आश्रम था। एक दिन वे आश्रम के बाहर बैठे थे। कुछ अनजान पथिक आये और उनसे पूछाः "बाबाजी ! बस्ती(गाँव) किधर है ?"

बाबाजी ने गाँव की विपरीत दिशा में बतलायाः

"बस्ती इस तरफ है।" वहाँ हकीकत में बस्ती नहीं थी श्मशान था।

वे अनजान पथिक वहाँ जाकर वापिस आये और महात्मा जी से कहाः "बाबाजी ! हमने आपसे बस्ती का पूछा और आपने श्मशान का बता दिया ! बस्ती कहाँ है ?"

महात्मा जी कहते हैं- "भाई ! बस्ती तो दाहिनी ओर है लेकिन वह बस्ती, बस्ती नहीं है। कोई कहीं भी आये-जाये सारा जीवन दौड़ धूप मचाये मगर आखिर में आकर सब श्मशान में ही बसते हैं। यहाँ आकर फिर कोई लौटते नहीं। वास्तविक बस्ती तो यही है।"

अन्त में श्मशान जाकर इस देह को वहाँ बसना पड़े उसके पहले तुम्हारे मन को आत्मा-परमात्मा स्वरूप में बसा दो भैया ! ताकि तुम्हारा पुनरागमन न हो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

वाह फकीरी.......

राजा तेजबहादुर की शोभायात्रा निकल रही थी, उस समय रास्ते पर एक संत बैठे हुए थे। उनका नाम धूलीशाह था। वे हमेशा भूल पर ही बैठे रहते। राजा की सवारी आ रही थी, इसलिए सिपाहियों ने जाकर कहाः

"महाराज ! उस किनारे हो जाइये। राजा की सवारी आ रही है।"

धूलीशाहजी बोलेः "राजा की सवारी आ रही है तो क्या बड़ी बात है ? उसको कहो कि सहजता से प्रणाम करके यहाँ से निकल जाये क्योंकि यहाँ महाराज विद्यमान हैं।"

सिपाहियों ने कहाः यदि राजा अकेले होते तो नमस्कार करके संकोच से निकल जाते, पर उनके हाथी, रथ, घोड़े आदि सब कैसे निकलें ? महाराज ! आप जरा किनारे हो जाइये।"

धूलीशाहजी बोलेः "यदि हाथी-घोड़े पर ही जाना हो तो दूसरा रास्ता पकड़ लो। उसे बता दो कि यदि तुम राजा हो तो मैं महाराजा हूँ। महाराजा यहाँ पर ही बैठेंगे। महाराजा की सवारी नहीं हट सकती।"

बात राजा तक पहुँची। राजा इतना आवेशी नहीं था। वह रथ से उतरकर आया और धूलीशाह की ओर निहारकर बोलाः

"महाराज ! आप राजा-महाराजा हो ?"

धूलीशाह जी बोलेः "हाँ, मैं महाराजा हूँ।"

राजाः "राजा के पास तो राज्य होता है, सिपाही होते हैं....खजाना होता है, नौकर होते हैं। राजा के पास अपनी पताका होती है, झंडा होती है। आपके पास क्या है ?"

धूलिशाहजी बोलेः "तेरा राज्य कोई छीन न ले इसलिये तू शत्रुओं से डरता है और तुझे सीमाओं की रक्षा करनी पड़ती है। मेरा तो कोई शत्रु ही नहीं है और मुझे सीमाओं की रक्षा की फिकर नहीं तो मैं सिपाही क्यों रखूँ ? तुझे तो नौकरों को वेतन भी देना पड़ता है, इसलिए धन भी चाहिए। मुझे तो कोई नौकरों को वेतन देना नहीं पड़ता इसलिए धन भी नहीं चाहिए। तेरे नौकर तो पैसे के लालच से तेरी सेवा करेंगे और अंदर से सोचेंगे कि कब राजा जाये। तेरा तो इस इलाके में ही आदर होगा, जबकि हम तो जहाँ जाएँगे वहाँ सब लोग मुफ्त में हमारी सेवा करेंगे। हमको नौकरों की जरूरत नहीं। हमको धन की भी जरूरत नहीं क्योंकि हमारा कोई खर्च नहीं है। हमें किसी से डर भी नहीं कि हम अंगरक्षक रखें। बात रही झोली, झंडा और पताका की, तो तेरी यह बाह्य पताका है, जबकि हमारी तो सोहं और शिवोहं की भीतर की पताका लहरा रही है। हम जहाँ भी नजर डालते हैं, वहाँ हमारा राज्य खड़ा हो जाता है। सीमाओं को सँभालने के लिए सिपाहियों की जरूरत नहीं पड़ती। तेरा राज्य तो जमीन पर कुछ दिन के लिए है, लेकिन फकीरों का राज्य तो दिलों पर होता है। फकीरों की हयाती (उपस्थिति) में तो होता ही है, परन्तु यदि वे चले जायें, फिर भी उनका राज्य तो समाज के दिलों पर शाश्वत रहता है। इसलिये भैया ! मैं तो महाराजा और तू राजा है। मेरी इच्छा है कि तू भी महाराजा हो जा।"

दास कबीर चढ्यो गढ़ ऊपर।
राज मिल्यो अविनाशी।।

साधक जब सहस्रार में चढ़ता है तो वह गढ़ पर पहुँच जाता है। दास कबीर चढयो....। वह अविनाशी राज्य को प्राप्त कर लेता है, जहाँ कोई वासना नहीं रहती, कोई कर्त्तत्व नहीं रहता। वहाँ परम शांति मिलती है। त्याग से शान्ति मिलती है, लेकिन आत्म साक्षात्कार से परम शांति

मिलती है। त्यागी को एकान्त और शुद्ध आहार, शुद्ध व्यवहार चाहिए। लेकिन आत्म साक्षात्कारी को एकान्त की भी आवश्यकता नहीं क्योंकि आत्म-साक्षात्कार हो गया तो एक ही में वह सारी वृत्तियों का अंत कर देता है।

बद्रीनाथ की यात्रा पर एक संत तथा उनके शिष्य साधु जा रहे थे। रास्ते में पहाड़ी इलाका आया। वहाँ पहाड़ी लोगों का कुछ उत्सव था और पहाड़ी भाषा में भजन बनाकर गा रहे थे। कोई झूम रहे थे। उनके गाने में रस था, मीठास थी, पर साधु लोग उनकी भाषा नहीं समझ पा रहे थे। वे एक-दूसरे में चर्चा कर रहे थे कि ये लोग क्या गा रहे हैं ? आखिर उन अनुभवी संत के पास बात गईः

"बाबाजी ! ये लोग क्या गा रहे हैं ?"

बाबाजी बोलेः "सब एक ही गा रहे हैं और एक ही से गा रहे हैं। तुम चाहे समझो या न समझो, वह प्रभु तो जानता है कि सब एक ही को गा रहे हैं और एक से ही गा रहे हैं।"

तुझमें राम मुझमें राम सब में राम समाया है.....
तुझमें ॐ मुझमें ॐ सब में ॐ समाया है.....

हमारे चैतन्य की वास्तविक ध्वनि ॐकार से मिलती जुलती है। इसीलिए बच्चा जब पैदा होता है तो उसका रूदन ॐकार की ध्वनि से ही होता है, ऊँवाँ....ऊँवाँ....ऊँवाँ ही होता है। बच्चा चाहे किसी भी देश, किसी भी मजहब का हो, उसकी ध्वनि ॐकार से जुड़ी होती है। वही बालक जब बूढ़ा होता है या मरीज होकर अस्पताल में पड़ा होता है तब भी उसकी आवाज ॐकार से मिलती होती है। चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो ?

हरेक का नित्य संबंध उसी अन्तर्यामी परमात्मा के साथ है, चाहे किसी भी देह में हो। देह बदलती रहती है परन्तु परमात्मा के साथ उसका सम्बन्ध वैसा का वैसा रहता है। इसलिए ईश्वर किसी को मिलता नहीं है। अर्जुन को भी नहीं मिला है। अर्जुन कहता हैः

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धवा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

अर्जुन को स्मृति हुई है। विस्मृति हो गई थी, स्मृति हुई है, इससे मिला हुआ कहा जाता है, बाकी तो वह हमेशा मिला हुआ ही है। जो वस्तु मिलती है उसके छीने जाने का भय होता है। जिसका संयोग होगा उसका वियोग निश्चित ही होगा। ईश्वरत्व की स्मृति होती है इसलिए अर्जुन कहता हैः **नष्टो मोहः......।**

गीता में एक प्रश्न करने का मन होता है। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

'जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब मैं आता हूँ और धर्म की स्थापना करते हूँ।'

वे ही श्रीकृष्ण आगे जाकर गीता के अठारहवें अध्याय में अर्जुन से कहते हैं-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

एक ओर तो 'मैं धर्म की स्थापना करने आता हूँ' ऐसा कहते हैं और वे ही भगवान श्रीकृष्ण आगे जाकर अर्जुन से कहते हैं किः "सब धर्मों को छोड़कर तू मेरी शरण में आ जा।' अब इन दोनों में कौन-सा वचन हमें स्वीकार करना चाहिए ? सब धर्मों को छोड़ देना चाहिए कि भगवान धर्म की स्थापना करने आते हैं यह बात माननी चाहिए ?

ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और गीता के प्रस्थानत्रयी कहलाते हैं। ब्रह्मसूत्र में विद्वानों के बस की बात है। जैसे-तैसे व्यक्ति उसे समझ नहीं सकते। उपनिषद् जिज्ञासुओं के लिए हैं। परन्तु श्रीमद् भगवदगीता प्राणीमात्र के लिए है।

कनाडा के राष्ट्रपति त्यागपत्र देकर एकांत में जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निकले, तब लोगों से उन्होंने कहाः "मैंने बाइबिल पढ़ी, कुरान पढ़ा, किन्तु जब भगवदगीता पढ़ी तब मुझे लगा कि जीते भी शांति और मरने के बाद मोक्ष का मार्ग खुल्ले हाथों बँटता हो तो भगवदगीता में और भगवदगीता केवल हिन्दूओं का ही धर्मग्रन्थ नहीं है पर मानवमात्र का ग्रन्थ है। यह गीता की विशेषता है।

गीता ने कोई पंथ, कोई मत या कोई जात-पाँत नहीं पकड़ी, पर इसमें मानव का कल्याण कैसे हो यही बातें दी हुई हैं। गीता विश्वग्रन्थ है। महापुरूषों के जन्मदिन या निर्वाणदिन मनाये जाते हैं, पर यदि किसी शास्त्र का जन्म दिन मनाया जाता है तो ऐसा ग्रंथ केवल गीता ही है। गीता-जयन्ती ही मनायी जाती है।

जब-जब समाज विषय-विलासी हो जाय, इन्द्रियगत ज्ञान में उसका जीवन नष्ट होने लगे, तब वह अव्यक्त ब्रह्म साकार रूप धारण करता है। निष्कामता का प्रचार-प्रसार करता है। निष्कामता आती है तो चित्त में है पर आगे जाकर मनुष्य प्रभुपरायण होता है और 'मैं क्या करूँ और क्या अनुचित है' ऐसा जब चिंतन होने लगता है तब परमात्मा इस जीव से कहते हैं कि इन सभी बाबतों में सारे कर्त्तव्य मेरे पर डालकर मुझ अन्तर्यामी की शरण में आ जा।

ईश्वर तत्त्व सनातन है और आपके छुपे हुए सनातन स्वभाव को जगाने के लिए व्यवस्था बनाई है। जैसे मूर्ति सर्जित-विसर्जित की जाती है ऐसे तुम्हारी देह रूपी मूर्ति भी सर्जित-विसर्जित होती है। मूर्ति विसर्जित होने पर परमात्मा नहीं मिटता। ऐसे तुम्हारा शरीर विसर्जित होने पर आत्मा नहीं मिटती। अर्थात् तुम नहीं मरते। आत्मा-परमात्मा अमर है। इस बात को जान लेना ही भगवान की पूर्ण शरण आ जाना है।

'सर्वधर्मान् परित्यज्य' सुनने के बाद अर्जुन ने कुछ छोड़ा नही है पर कर्तृत्व का भाव ही छोड़ा है। युद्ध तो किया पर कर्त्तापन ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दिया। शुरुआत में भगवान ने कहा कि धर्म की स्थापना के लिए स्वयं अवतरित हुए हैं, यह बात तो ठीक है। किन्तु जब जीव को यह समझ में नहीं आता कि मेरे लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है, तब उस जीव को अंतर्मुख होकर प्रभु की शरण में जाना चाहिए। अपने कर्त्तत्व भावका जब बाध हो जाए, तब उसके लिए जो हितकर होगा वही उसके द्वारा वह अन्तर्यामी परमात्मा करवायेगा।

एक व्यक्ति आया और उसने कहाः "बापू ! जय-जय।"

बाबाजी ने कहाः "हिन्दी जानते हो ?"

तो वह बोलाः "बाबाजी ! हिन्दी I don't know."

तब बाबाजी बोलेः "फिर क्या ? तुम हिन्दी सीख लो।

जब वह हिन्दी पढ़कर आया तो पूछाः

"रामायण जानते हो ?"

वह बोलाः "नहीं।"

बाबाजीः "तो फिर हिन्दी क्या सीखा ?"

वह रामायण पढ़कर आया तब बाबा जी बोलेः

"रामायण तो पढ़ी पर उसका अर्थ जानते हो ?"

वह बोलाः "अर्थ तो नहीं जानता हूँ।"

बाबाजीः "तो फिर अर्थ सीख कर आओ।"

वह अर्थ सीखकर आया और बोलाः "बाबाजी ! हिन्दी भी पढ़ी, रामायण भी पढ़ी, सब याद है, उसके अर्थ भी याद हैं।"

बाबाजीः "अर्थ याद है लेकिन अमल करते हो ?"

वह बोलाः "अभी तो नहीं करता।"

बाबाजीः "तो फिर क्या पढ़ा ? क्या किया ?"

वह थोड़ा अमल करने लगा फिर पूछाः "अब क्या हाल है ? अमल तो करते हो पर अपने द्वारा चार आदमियों को रामायण या भागवत की तरफ लगाते हो ?"

वह बोलाः "नहीं, वह तो नहीं होता।"

बाबाजीः "तो फिर तुम्हारा अमल करना तो बेकार हो गया।"

एक बात का पहले समर्थन होता है तो उसी बात का आगे चलकर खंडन होता है। खंडन क्यों होता है ? क्योंकि उसे और आगे बढ़ाना है। इसलिए कभी-कभी शास्त्र में आता है कि गणपति जी द्वारपाल होकर बैठे थे और शिवजी ने क्रोध से उनका शिरोच्छेद कर दिया। माँ पार्वती को पता चला तो वह नाराज हुई तो शिवजी ने गणों से कहा कि किसी का सिर ले आओ। वे हाथी का मस्तक लेकर आये और शिवजी ने गणपति के ऊपर बिठा दिया तो हाथी के मस्तक के वजन से गणपति का पेट बाहर आ गया। जो भगवान हाथी का मस्तक सेट कर सकते हैं वे क्या गिरा हुआ मस्तक 'सेट नहीं कर सकते ? लेकिन पुराणों में ऐसी कई आश्चर्यजनक घटनाएँ ताकि लोग शंका-समाधान के लिए महापुरूषों के पास पहुँचे। कुछ ऐसी घटनाएँ हैं कि जिनमें आध्यात्मिक संकेत हैं। इन पौराणिक घटनाओं को समझने के लिए हम तत्त्ववेत्ता महापुरूषों के द्वार पर पहुँचे इसीलिए कभी-कभी ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएँ पुराणों में आती हैं।

शास्त्र में लिखा है कि सबमें भगवान है। इसलिए सुपारी में या गुड़ में गणपति की भावना कर स्थापना की जाती है। यह सनातन शास्त्र ने बड़ा साहस किया है कि जिससे तुम अपने भाव जगा सको। तुम्हारा भाव जागने से तुम थोड़े अन्तर्मुख हो जाते हो तो भगवान का सर्जन और विसर्जन करने में भी भगवान नाराज नहीं होते। क्योंकि भगवान को अपनी अमरता का पता है। किसी सेठ और अमलदार के चित्र की आप पूजा करो और बाद में नदी में विसर्जन कर आओ तो वह नाराज हो जाएगा। लेकिन दिनभर गणपति की मूर्ति को सजाओ और शाम को समुद्र में अर्पण करके आओ तो भी गणपति नाराज नहीं होते क्योंकि हमारे सनातन धर्म के ऋषियों ने गहरा अध्ययन किया है। अपनी जातिगत विशेषताओं और सामाजिक विशेषताओं को करते हुए आत्मा-परमात्मा में स्थिर होकर तुम तर जाओगे।

गीता एक ऐसा अदभुत ग्रंथ है कि उसकी भाषा सरल है। वह ग्रन्थ है छोटा सा, पर उसमें सब कुछ है। कुल अड़तालीस गीताएँ हैं। अवधूत गीता, मंकी गीता, अष्टावक्र गीता, शिवगीता, रामगीता, ऐसी अड़तालीस प्रकार की गीताएँ हैं पर श्रीमद् भगवदगीता में सब कुछ समाहित हो जाता है। उसी से श्रीमद् भगवदगीता को खूब ख्याति मिली है। ऐसी भगवदगीता में कहा गया है किः

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।

कर्म तो करें, लेकिन फल की लालसा से जब कर्म करते हैं तो कर्त्तत्व की योग्यताएँ नष्ट हो जाती हैं। जब निष्काम भाव से कर्म करते हैं तब हमारी योग्यताएँ खिलती हैं। यदि कोई कहे कि "मैं चोरी तो करता हूँ लेकिन निष्काम भाव से।" लेकिन निष्काम भाव से चोरी नहीं होती। उसमें सुख लेने की कामना होती है। सुख लेने की चीज नहीं है, सुख देने की चीज है। मान लेने की चीज नहीं हैं, मान देने की चीज है। यह बात घर में, समाज में, कुटुम्ब में समझ में आ जाए तो गीता का ज्ञान तुम्हारे जीवन में छलकने लगेगा। जीवन का सूर्य, ढलने से पहले घर में स्वयं हो जाएगा।

समाज में, कुटुम्ब में, सब एक-दूसरे से मान और सुख चाहते हैं, इसीलिए झगड़े और क्लेश होते हैं। सुख और मान लेने की चीज नहीं, देने की चीज है।

जो मान देता है वह मान का दाता कहलाता है। जो सुख देता है वह सुख का दाता कहलाता है। जो सुख का दाता होता है वह क्या कभी दुःखी हो सकता है ? सुख देने के भाव मात्र से ही तुम्हारे हृदय का सुख छलकने लगेगा। सुख वास्तव में देने की वस्तु है। निष्काम भाव से कर्म करने से तुम्हारे हृदय के दोष दूर होंगे और तुम्हारे अन्दर अन्दर का सुख छलकने लग जाएगा। जैसे-जैसे तुम्हारे अंदर का सुख छलकने लग जाएगा वैसे-वैसे तुम्हारी बुद्धि का तीसरे और चौथे शरीर का विकास होने लगेगा। इसलिए गीता में कहा हैः

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

करने योग्य कर्म तो करें, पर सुख लेने की लालसा से नहीं, सुख देने की भावना से। ऐसा बोलो कि दूसरे का हृदय तरे, ऐसा देखो कि दूसरे को संकोच न हो। तुम्हारे द्वारा ऐसा व्यवहार करो कि दूसरे को दुःख न हो। तुम्हारे घर यदि शत्रु आये, तो उसे तुम प्रेम से ऊँचे आसन पर बिठाओ, उसे पानी दो, उसे मान दो। तुम्हारी निन्दा करने वाले को तुम मान दो। तुम भले अमानी रहे और शत्रु को मान दिया तो शत्रु को भी बड़े बनाने वाले तुम हुए कि नहीं ?

अब्राहम लिंकन से मित्र कहते थे कि तुम अमेरिका के राष्ट्रपति हुए। तुम्हारी निन्दा करके जो लोग तुम्हारे पीछे पड़े उनके साथ तुम अच्छा व्यवहार करते हो ? अब तो तुम राष्ट्रपति हो गये हो तो तुम्हें उनको कुचल डालना चाहिए। तब अब्राहम लिंकन स्वाभाविक रूप से जिस हास्यमुद्रा में रहते थे, उसी मुद्रा में हँसे। मित्रों ने कहा कि आप हमारी सारी बातें हँसी में निकाल देते हो। हम आपसे कहते हैं कि ये आपके शत्रु हैं तो उन्हें ठीक करना चाहिए। तब अब्राहम लिंकन हँसकर कहने लगेः

"मैं यही तो कर रहा हूँ।"

लोग कहने लगेः "आप तो उन्हें मान दे रहे हैं।"

तब पुनः लिंकन बोलेः "बाहर से उन्हें कुचल डालने से अंदर की शत्रुता नष्ट नहीं होती, ये तो दूसरे जन्म में भी रहती है। मैं उन्हें प्रेम देकर उनके हृदय में से शत्रुता निकाल रहा हूँ। घृणा से शत्रुता नहीं जाती है।"

मैं भी रानी तू भी रानी।
कौन भरेगा घर का पानी ?

मान लेने की लालसा से घर में भी झगड़े होते हैं। सब सुख होते हुए भी एक दूसरे के हृदय में होली जलती रहती है।

मान पुड़ी है जहर की खाये सो मर जाये।
चाह उसी की राखता, वह भी अति दुःख पाये।।

तुलसीदास जी कहते हैं-

राम झरोखे बैठ के, सबका मुजरा लेत।
जैसी जिसकी चाकरी, प्रभु तैसा तिसे फल देत।।

तुम बुरा काम करते हो तो कोई दैत्य तुम्हारा हाथ पकड़कर नरक में नहीं ले जाता और तुम अच्छा काम करते हो तो देवता तुम्हारा हाथ पकड़कर स्वर्ग में नहीं ले जाता। परंतु जब तुम बुरा काम करते हो तब तुम्हारा अन्तःकरण मलिन हो जाता है और तुम्हारे निर्णय हल्के होते हैं, तुम्हारा जीवन अंधकारमय हो जाता है। तुम जब अच्छा काम करते हो तो बुद्धि सत्त्वप्रधान हो जाती है। तुम्हारे निर्णय सही आते हैं तो तुम्हारा जीवन उज्जवल हो जाता है।

को काहू को नहीं सुख-दुःख करि दाता।
निज कृत कर्म भोगतहिं भ्राता।।

कोई किसी के सुख-दुःख का दाता नही है। मनुष्य अपने सत्कर्म से ही मुक्त होता है।

गीता कहती हैः "**अनाश्रितः कर्मफलं..........।**"

संकल्पों एवं सुखों की इच्छा त्याग किये बिना कोई योगी नहीं हो सकता है। कोई संन्यासी भी नहीं हो सकता है। सुख की लालसा अंदर से जितने प्रमाण में छूटती जाएगी उतने ही प्रमाण में योगी होने लगोगे।

महाभारत के युद्ध की एक घटना है। भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं-

"हे युधिष्ठिर ! अब तुम विजेता हुए हो तो अब राजतिलक का दिन निश्चित कर तुम राज्य भोगो।"

तब युधिष्ठिर कहते हैं- "मुझसे अब राज्य नहीं भोगा जाएगा। मैं अब तप करना चाहता हूँ। मुझे राज्यसुख की आकांक्षा नहीं है। तप करके फिर आकर राज्य सँभालूँगा।"

तब भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

"नहीं, तुमसे फिर राज्य नहीं होगा क्योंकि अब कलियुग का प्रभाव शुरू हो चुका है। इसलिए तुम थोड़े समय राज्य करो, फिर तप करना।"

युधिष्ठिर को यह बात समझ में नहीं आयी। वे कहने लगेः

"पहले तप करूँगा, बाद में राज्य करूँगा।"

तब श्रीकृष्ण पुनः बोलेः "फिर राज्य नहीं हो सकेगा।"

युधिष्ठिर के चित्त में राज्य करने की रूचि न थी। तब श्रीकृष्ण कहते हैं- "तुम पाँचों भाई वन में जाओ और जो कुछ भी दिखे वह आकर मुझे बताओ। मैं तुम्हें उसका प्रभाव बताऊँगा।"

पाँचों भाई वन में गये।

युधिष्ठिर महाराज ने देखा कि किसी हाथी की दो सूँड है। यह देखकर आश्चर्य का पार न रहा। अर्जुन दूसरी दिशा में गये। वहाँ उन्होंने देखा कि कोई पक्षी है, उसके पंखों पर वेद की ऋचाएँ लिखी हुई हैं पर वह पक्षी मुर्दे का मांस खा रहा है। यह भी आश्चर्य है ! भीम ने तीसरा आश्चर्य देखा कि गाय ने बछड़े को जन्म दिया है और बछड़े को इतना चाट रही है कि बछड़ा लहुलुहान हो जाता है। सहदेव ने चौथा आश्चर्य देखा कि छः सात कुएँ हैं और आसपास के कुओं में पानी है किन्तु बीच का कुआँ खाली है। बीच का कुआँ गहरा है फिर भी पानी नहीं है। पाँचवे भाई नकुल ने भी एक अदभुत आश्चर्य देखा कि एक पहाड़ के ऊपर से एक बड़ी शिला लुढ़कती-लुढ़कती आती और कितने ही वृक्षों से टकराई पर उन वृक्षों के तने उसे रोक न सके। कितनी ही अन्य शिलाओं के साथ टकराई पर वह रुक न सकीं। अंत में एक अत्यंत छोटे पौधे का स्पर्श होते ही वह स्थिर हो गई।

पाँचों भाईयों के आश्चर्यों का कोई पार नहीं ! शाम को वे श्रीकृष्ण के पास गये और अपने अलग-अलग दृश्यों का वर्णन किया।

युधिष्ठिर कहते हैं- "मैंने दो सूँडवाला हाथी देखा तो मेरे आश्चर्य का कोई पार न रहा।"

तब श्री कृष्ण कहते हैं- "कलियुग में ऐसे लोगों का राज्य होगा जो दोनों ओर से शोषण करेंगे। बोलेंगे कुछ और करेंगे कुछ। ऐसे लोगों का राज्य होगा। इससे तुम पहले राज्य कर लो। अर्जुन ने आश्चर्य देखा कि पक्षी के पंखों पर वेद की ऋचाएँ लिखी हुई हैं और पक्षी मुर्दे का मांस खा रहा है। इसी प्रकार कलियुग में ऐसे लोग रहेंगे जो बड़े-बड़े कहलायेंगे। बड़े पंडित और विद्वान कहलायेंगे किन्तु वे यही देखते रहेंगे कि कौन-सा मनुष्य मरे और हमारे नाम से संपत्ति कर जाये। संस्था के व्यक्ति विचारेंगे कि कौन सा मनुष्य मरे और संस्था हमारे नाम से हो जाये। पंडित विचार करेंगे कि कब किसका श्राद्ध है ? चाहे कितने भी बड़े लोग होंगे किन्तु उनकी दृष्टि तो धन के ऊपर (मांस के ऊपर) ही रहेगी।

परधन परमन हरन को वैश्या बड़ी चतुर।

ऐसे लोगों की बहुतायत होगी, कोई कोई विरला ही संत पुरूष होगा।

भीम ने तीसरा आश्चर्य देखा कि गाय अपने बछड़े को इतना चाटती है कि बछड़ा लहुलुहान हो जाता है। कलियुग का आदमी शिशुपाल हो जायेगा। बालकों के लिए ममता के कारण इतना तो करेगा कि उन्हें अपने विकास का अवसर ही नहीं मिलेगा। किसी का बेटा घर छोड़कर साधु बनेगा तो हजारों व्यक्ति दर्शन करेंगे किन्तु यदि अपना बेटा साधु बनता होगा तो रोयेंगे कि मेरे बेटे का क्या होगा ? इतनी सारी ममता होगी कि उसे मोहमाया और परिवार में ही बाँधकर रखेंगे और उसका जीवन वहीं खत्म हो जाएगा। अंत में बिचारा अनाथ होकर मरेगा। वास्तव में लड़के तुम्हारे नहीं हैं, वे तो बहुओं की अमानत हैं, लड़कियाँ जमाइयों की अमानत हैं और तुम्हारा यह शरीर मृत्यु की अमानत है। तुम्हारी आत्मा-परमात्मपा की अमानत हैं। तुम अपने शाश्वत संबंध को जान लो बस !

सहदेव ने चौथा आश्चर्य यह देखा कि पाँच सात भरे कुएँ के बीच का कुआँ एक दम खाली ! कलियुग में धनाढय लोग लड़के-लड़की के विवाह में, मकान के उत्सव में, छोटे-बड़े उत्सवों में तो लाखों रूपये खर्च कर देंगे परन्तु पड़ोस में ही यदि कोई भूखा प्यासा होगा तो यह नहीं देखेंगे कि उसका पेट भरा है या नहीं। दूसरी और मौज-मौज में, शराब, कबाब, फैशन और व्यसन में पैसे उड़ा देंगे। किन्तु किसी के दो आँसूँ पोंछने में उनकी रूचि न होगी और जिनकी रूचि होगी उन पर कलियुग का प्रभाव नहीं होगा, उन पर भगवान का प्रभाव होगा।

पाँचवा आश्चर्य यह था कि एक बड़ी चट्टान पहाड़ पर से लुढ़की, वृक्षों के तने और चट्टाने उसे रोक न पाये किन्तु एक छोटे से पौधे से टकराते ही वह चट्टान रूक गई। कलियुग में मानव का मन नीचे गिरेगा, उसका जीवन पतित होगा। यह पतित जीवन धन की शिलाओं से नहीं रूकेगा न ही सत्ता के वृक्षों से रूकेगा। किन्तु हरिनाम के एक छोटे से पौधे से, हरि कीर्तन के एक छोटे से पौधे मनुष्य जीवन का पतन होना रूक जायेगा। इसलिए पांडवो ! तुम पहले थोड़े समय के लिए राज्य कर लो। कलियुग का प्रभाव बढ़ेगा तो तुम्हारे जैसे सज्जनों के लिए राज्य करना मुश्किल हो जाएगा। फिर तप करते-करते सीधे स्वर्ग में जाना, स्वर्गारोहण करना।"

अभी पवित्र पुरूषों के लिए भगवन्नाम कीर्तन, सत्संग ध्यान, निर्भयता और नारायण की प्रसन्नता के कार्यों को करते-करते स्वर्गारोहण करना जरूरी है। जुल्म करना तो पाप है किन्तु जुल्म सहना दुगना पाप है। पाप करना तो पाप है किन्तु पापी और हिंसकों से घबराकर उन्हें छूट देना महापाप है।

राजा भोज के दरबार में ऐसी चर्चा होती थी कि प्रजा के ज्ञान, भक्ति और आत्मसुख कैसे बढ़े। एक सुबह राजा भोज सभा में आये और पंडितों से प्रश्न किया कि अमृत कहाँ होता है ? किसी सिखाऊ पंडित ने कहाः

"स्वर्गे वसति अमृतम्। स्वर्ग में अमृत होता है।"

पर राजा भोज को संतोष न हुआ। इससे उन्होंने यहाँ वहाँ निहार कर प्रार्थना कीः

"हे महाजनों ! हे कविराजों ! हे विद्वानों ! मेरी जिज्ञासा प्रजाजनों की ज्ञानवृद्धि के लिए है और मेरे प्रश्न का उत्तर मिले तो मुझे भी आनन्द हो। मैं तुम्हारी परीक्षा के लिए नहीं पूछता हूँ परन्तु प्रजा का कल्याण हो और मुझे शांति मिले, इसलिए पूछता हूँ। सच्चा अमृत कहाँ रहता है?"

तब दूसरे पंडित ने कहाः **"सागरे वसति अमृतम्।"** सागर में अमृत रहता है।"

पर राजा भोज को संतोष न हुआ। फिर कुछ दूसरे पंडितों ने कहा कि विषधर के पास अमृत होता है। पर उससे भी राजा को संतोष न हुआ। तब कोई एकदम नये पंडित जी ने कहा किः "सुन्दरी के ओठों में अमृत होता है।" राजा भोज को लगा कि सुन्दरी के ओठों में तो लार होती है पर मूर्ख कवियों ने सुन्दरी का वर्णन करते-करते उसके ओठों में अमृत होता है ऐसी कल्पना की है। पर वहाँ तो मरे हुए बैक्टेरिया और बदबू होती है। वहाँ अमृत कैसे हो सकता है ?

आखिर राजा भोज की नजर महाकवि कालिदास पर पड़ी और उन्होंने कवि महाकवि कालिदास से प्रार्थना कीः

"हे कविराज ! अमृत कहाँ होता है ?"

तब कालिदास ने कहाः "यदि स्वर्ग में अमृत होता तो स्वर्ग में स्थित देवताओं का पतन न होता। यदि सागर में अमृत होता तो सागर इतना खारा क्यों होता ? विषधर के पास यदि अमृत होता तो उसके पास जहर क्यों होता ? यदि सुन्दरी के पास अमृत होता तो उसका पति भी मर जाता है और वह भी मर जाती है। ऐसा क्यों ? वास्तव में अमृत वहाँ नहीं है, वहाँ तो अमृत की कल्पना है। यह तो पुण्य नाश करना है। सच्चा अमृत तो संतों के वचनों में है।

कंठे सुधा वसति भगवज्जनानाम्।

भगवान के प्यारे भक्तों, संतों के कंठ में, उनकी वाणी में ही वास्तविक अमृत है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भगवदभाव कैसे बढ़े ?

वीतरागभयक्रोधाः मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसो पूता मद् भावमागताः।।

'जिसके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये हैं और जो मेरे ही परायण तथा मेरे ही आश्रित रहने वाले हैं ऐसे ज्ञानरूप तप से पवित्र हुए बहुत से भक्त मेरे भाव को प्राप्त हुए हैं।'

(भगवदगीताः 4.10)

साधक ऐसा चाहिए जाके ज्ञान विवेक।
बाहर मिलता सों मिले अंदर सबसे एक।।

भगवान श्रीकृष्ण यहाँ कह रहे हैं 'मेरे आश्रित।' इसका मतलब यह नहीं कि मंदिर में जो श्रीकृष्ण की प्रतिमा है वहाँ जाकर लोट-पोट होना है।

जो श्री कृष्ण का माम् है वही, गहराई से देखो तो तुम्हारा भी माम् है। श्रीकृष्ण कहते हैं - मेरे आश्रित। मतलब की तुम अपने आपमें, जहाँ श्रीकृष्ण मैं कह रहे हैं वहाँ रहो। जिसने अपने आपका आश्रय लिया है, ऐसे जो ज्ञानयोग रूपी तप से पवित्र हुए हैं, वे भगवदभाव को प्राप्त होते हैं। तप भी केवल भावना और मान्यता से नहीं किन्तु ज्ञानमय तप। **'यस्य ज्ञानमयं तपः।'** ज्ञान-संयुक्त तप से बढ़कर दुनिया में और कोई तप नहीं है।योग की दृष्टि से एकाग्रता बड़ा तप है, परंतु जहाँ पतंजलि का योगदर्शन समाप्त होता है, जहाँ क्रियायोग समाप्त होता है वहीं से ज्ञानयोग शुरू होता है।

पतंजलि के योग की या और योगों की साधना करते करते जब कषाय परिपक्व हो जाते हैं, ज्ञान की किरण मिल जाती है तो यह स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर के साथ का संबंध-विच्छेद करके जीव अपने शिवस्वभाव को पा लेता है। यही कृष्णभाव को पाना है। यह बात सूक्ष्मता से समझना है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मेरे आश्रित रहने वाले हैं, ऐसे बहुत से भक्त मेरे भाव को प्राप्त हुए हैं। जिस तत्त्व में मैं ज्यों का त्यों हूँ, उसी में वे स्थित हुए हैं। मुझसे तनिक भी कम नहीं हुए।

कोई लहर अगर ज्ञानयोग में आ जाय तो सागर कहता है कि वह मेरे भाव को प्राप्त हुई है। कैसे प्राप्त हुई ? वह सागर हो गयी। जलराशि पहले भी थी ही।

भगवान ने आगे इसी बात को दोहराया हैः

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

रामायण ने भी इसी आशय को प्रकट कियाः

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन विमल सहज सुखराशि।।

तुम अपने को "मैं-मैं" करके जीव मानते हो, वह "मैं" भी चेतन है। जड़ मैं-मैं नहीं बोल सकता। चैतन्य की सत्ता से ही तुम्हारा मुँह चलता है। जीभ हिलती है। हिलचाल तो और जड़ पदार्थों में भी होती है, मगर उनको अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं है, जबकि तुम्हें अपने अस्तित्व का ज्ञान है। तुम्हारे वास्तविक अस्तित्व का ज्ञान तुम्हें भी नहीं है। तुम्हारे इर्द-गिर्द जो साधन थोपे गये हैं जो संस्कार थोपे गये हैं उन साधन, संस्कार और वासनाओं का गुड़गोबर करके अपने को कुछ मान लेते हो। कुछ सफेद, कुछ काले बाल हैं, कुछ हाड़-मांस है, कुछ रक्त, कुछ मन की चंचलता और एकाग्रता है, कुछ बुद्धि का निर्णय-अनिर्णय है। इन सबको सत्ता तुम देते हो और मिला जुलाकर उसे मैं मानते हो। परंतु जो ज्ञानयोग के तप से पवित्र हुआ है ऐसे साधक के लिए भगवान कहते हैं कि वह मेरे भाव को प्राप्त हुआ है।

भगवद भाव को भगवद-अनुभव को हम कैसे प्राप्त हों ? कौन प्राप्त होता है ?

वीतरागभयक्रोधाः मन्मया मामुपाश्रिताः।

जिसका राग, भय, क्रोध व्यतीत हो गया, वह भगवद भाव को प्राप्त होता है।

बालक का राग सुषुप्त है। वह सुंदर, सुहावना लगता है, निश्चिंत रहता है। उसकी सहज हिलचाल, बोलचाल, तुतली भाषा भी माँ-बाप की थकान कुछ देर के लिए मिटा देती है। परंतु ज्ञानयोग से जिन मुनीश्वरों के भय, राग, क्रोध चले गये हैं, उनकी बोलचाल साधकों की जन्म-मरण की थकान मिटाने का सामर्थ्य रखती है।

वीतरागभयक्रोधाः मन्मया माम्मुपाश्रिताः।

जिनके राग, भय और क्रोध व्यतीत हो गये हैं......

यह राग, भय और क्रोध होता कैसे है ? राग होता है मिटने वाली वस्तुओं में आसक्ति करने से। मिटने वाले नश्वर भोग-पदार्थों को पाने की इच्छा से राग होता है। उस वस्तु, परिस्थिति की प्राप्ति में कोई विघ्न डालता है और वह अपने से छोटा है तो उस पर क्रोध आता है। अपने से बड़ा आदमी विघ्न डालता है तो भय होता है। यह जो धन, प्रतिष्ठा, वैभव, मान-पद आदि मिलता है वह हमसे छूट न जाये, इस प्रकार का भय मन में बना रहता है। जो कुर्सी मिली है, वाहवाही मिली है, घरबार मिले हैं, जो क्षणभंगुर देह मिली है वह कहीं चली न जाये इसका भय बना रहता है। राग, भय और क्रोध का उदगमस्थान है नश्वर पदार्थों में, नश्वर संबंधों में और नश्वर देह-इन्द्रियों में शाश्वत की तरह प्रीति रखने की गलती। दुनिया के सारे दुःखों का उदगमस्थान यही है कि परिवर्तनशील परिस्थितियों को थामने की गलती करना। इन पदार्थों को आज तक कोई थाम नहीं सका, चाहे सेठ हो, चाहे राजा हो, चाहे प्रजा हो चाहे साधु हो, चाहे पीर-फकीर-औलिया हो, चाहे अवतार हो। मगर इन सब की एक घड़ी ऐसी आती है कि जब सर्वस्व छोड़ने की जरूरत पड़ती है। ऐसा दुनिया में कोई माई का लाल पैदा नहीं हुआ कि मिली हुई देह को, मिले हुए धन को, मिली हुई सत्ता को, मिले हुए मान को, परिस्थितियों को सँभालकर साथ ले गया हो। ऐसा आज तक दुनिया में कोई आया नहीं, आयेगा नहीं, आ सकता

भी नहीं। फिर भी लोग धमाधम किये जा रहे हैं। क्योंकि **'अज्ञानेन आवृत्तं ज्ञानम्।'** अज्ञान से उनका ज्ञान ढक गया है इसलिए वे बेचारे जंतु की तरह विमोहित होते हैं।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जंतवः।

सब छूट जाएगा, नश्वर चीजें नष्ट हो जायेगी। ऐसा जानकर त्याग करके साधु हो गये, परंतु **'मन्मया'** नहीं हुए तो फिर याद रहेगा कि मैंने रूपये छोड़े, पुत्र-परिवार छोड़ा, नमक-शक्कर छोड़े, अन्न छोड़ा आदि......। **'मन्मया'** न हुआ तो अपने मैं को ठीक रूप से नहीं जान पायेगा और ठीक रूप से नहीं जान पाया तो त्याग के बाद भी कोई गलती कर लेगा। त्यागी होने का अहंकार भर लेगा। इसलिए एक तो नश्वर चीजों की आस्था विवेकवती बुद्धि से चित्त में से हटा दी जाये और दूसरा, शाश्वत स्वरूप में प्रीति की जाय। बस, ये दो काम ही करने हैं। आपने कितने काम किये बचपन से लेकर, कितना ही पढ़े, कितनों की खुशामद की, शादी की, सास-ससुर को खुश किया, साहबों को रिझाया। अब परमात्मा को रिझाने के लिए ये दो काम कर लो। फिर दुनिया आपको रिझाती फिरेगी ऐसे आप बन जाओगे। फिर आप ऐसे महान बन जाओगे कि दुनिया आपकी मनौती मानकर अपना काम बनाने लग जायेगी। केवल ये दो ही काम करने हैं, एक तो नश्वर को नश्वर जानकर उसमें से प्रीति हटाना है और दूसरा, शाश्वत को मैं रूप में जान लेना है। शास्त्र सब प्रसन्न हो जाएँगे। यक्ष, किन्नर, गंधर्वों को धिक्कार है जो आपकी चाकरी में न लग जायें। देवता भी आपके काम करने के लिए स्पर्धा करने लगेंगे। आप इतने महान हो जाओगे। केवल ये दो बातें करनी हैं।

भगवान जहाँ ठहरे हैं, वे चाहते हैं कि आप भी वहीं ठहर जाओ। भगवान की निगाह को अपनी निगाह बना लो। ब्रह्मवेत्ता का अनुभव अपना अनुभव बना लो। भगवान या संत आपसे कुछ छीनना नहीं चाहते। अगर कुछ छीनना चाहते हैं, वह बेवकूफी ही छीनना चाहते हैं। शाश्वत आत्मा, भगवान पराया लग रहा है वह परायापन छीनते हैं। वे और कुछ छीनना नहीं चाहते। संत और सत्शास्त्र हमसे अज्ञान छीनना चाहते हैं। ईश्वर को पराया मानकर, दूर मानकर अगर साधन करेंगे तो बरकत नहीं आयेगी। जूते को अपना मानते हैं, फाउंटेनपेन को अपना मानते हैं तो भगवान को क्यों पराया मानते हैं और दुःखी हो रहे हैं ?

अरे यार ! मनुष्यजन्म पाकर भी दुःखी और परेशान रहे तो बड़े शर्म की बात है। दुःख और परेशानी तो वे उठाये जिनके माई-बाप मर गये हों। आपके माई-बाप आपका परमात्मा सदा आपके साथ है, फिर क्यों दुःखी और चिंतित होते हैं ?

आप गहराई से खोजो कि जब-जब दुःख होता है तो किस निमित्त से होता है ? ईमानदारी से जरा गोता मारकर देखो कि जब-जब दुःख होता है या भय होता है या क्रोध आता है तो किस निमित्त से आता है ? जब भी भय, दुःख, क्रोध आये तो देखना कि क्यों आये हैं ? ये आते हैं और आप इनसे सहमत हो जाते हैं, हस्ताक्षर कर देते हैं। चालू गाड़ी में कूद कर चढ़ जाते हैं, क्योंकि यह पुरानी आदत है। मगर अब ठहरो, देखो कि यह गाड़ी कहाँ जा रही है।

अपने गाँव न जाने वाली गाड़ी भले खाली हो, बढ़िया कोच हो, ए.सी. डाईनिंग कार की सुविधा हो मगर वह तुम्हारे काम की नहीं और तुम्हारे गाँव जाने वाली गाड़ी में भले सीटें टूटी-फूटीं हों, पंखे भी न लगे हों, फिर भी उसमें कूद कर भी चढ़ना पड़े तो चढ़ बैठना, मगर पराई गाड़ी में मत बैठना।

अब यह जानो कि तुम्हारा गाँव कहाँ है ? तुम्हारा गाँव वहाँ है, जहाँ जाने के बाद तुम्हारा अधःपतन न हो। जहाँ जाने पर तुम्हारी थकान मिटे। बाजार गये, इधर गये, उधर गये, यात्रा करने गये। गये तो उत्साह से थे मगर लौटे थक कर। घर जायें तो आराम। अपना घर पृथ्वी का छौर है। चाहे कैसी भी उत्तर-दक्षिण की यात्रा कर लो मगर थकान मिटाना है तो लौटकर घर पर ही आना होगा। मगर यह भी समझना जरूरी है कि वास्तव में यह घर तुम्हारा नहीं, तुम्हारे शरीर का है। शरीर की थकान मिटाना है तो चार-दीवार के घर में आओ। अपनी थकान मिटाना है, तो आत्मज्ञानरूपी घर में आओ, तुम्हारा बेड़ा पार हो जाएगा। उसके सिवाय कोई भी उपाय आज तक सफल हुआ नहीं।

योगवाशिष्ठ में आता है कि ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना की और जीवों को राग, भय, क्रोध, इच्छा, द्वेष आदि से दुःखी देखा। जैसे पिता अपने पुत्र-परिवार का दुःख देखकर कुछ सोच विचार करता है और उसके लिए उपाय खोजता है, ऐसे ही जब ब्रह्माजी ने देखा की जीव बेचारे दुःखी , चलो यज्ञ, होम-हवन का प्रचार-प्रसार हो ताकि जीव स्वधा-स्वाहा आदि की ध्वनि प्राणवायु शुद्ध करें, अपने मन को थोड़ा एकाग्र करें, यहाँ भी थोड़ा सुखी रहें और परलोक में स्वर्ग की सुख-सुविधा भी भोगें।

मगर ब्रह्माजी ने पाया कि इतना करने के बाद भी व्यक्ति की एकाग्रता होती है तो संसार की चीजों को पकड़ता है। मरते दम तक छोड़ता नहीं। स्वर्ग में आता है तो स्वर्ग को पकड़ता है। स्वर्ग में भी सदा नहीं रह सकता है।

बाहर की चीजों से आदमी सदा जुड़कर रह ही नहीं सकता। अरे, मुझ सृष्टिकर्त्ता को भी कल्प के अंत में रवाना हो जाना पड़ता है तो मेरे उत्पन्न किये जीव सदा कैसे रह सकते हैं ?

तुम रात्रि में सपना देखते हो। उसमें तुमने देखाः एक सुन्दर शापिंग काम्पलेक्स है। उसमें कई दुकानें हैं। हलवाई की, फोटोग्राफ की, कपड़े की आदि तमाम दुकाने हैं। ग्राहक भी हैं। ग्राहक अपने फोटो खिंचवा रहे हैं। हलवाई की दुकान पर मिठाई ले रहे हैं। अब उनका मिठाई खरीदना या फोटो खिंचवाना तब तक जिन्दा है जब तक तुम स्वप्न में हो। तुम्हारा स्वप्न शाश्वत तो है नहीं। और जब स्वप्न शाश्वत नहीं तो मिठाई की दुकान वाला हलवाई कैसे शाश्वत रहेगा ? मिठाई की दुकान पर मुँह में पानी लाने वाला कैसे शाश्वत रहेगा ?

ऐसे ही तुम्हारा यह आना, जाना, रहना, जीना तब तक है जब तक ब्रह्माजी का स्वप्न चालू है। जैसे चालू स्वप्न में कई चले जाते हैं, मिट जाते हैं, बिछुड़ जाते हैं, ऐसे ही ब्रह्मा जी के चालू स्वप्न में ही हम लोग संसार से रवाना हो जाते हैं।

देखत नैन चलो जग जाई।
का मांगूं कछु स्थिर न रहाई।।

आँखों के देखते-देखते जगत पसार हो रहा है।

समय की सरिता में हम लोगों की सारी स्वप्नतुल्य चेष्टाएँ सरकती जा रही हैं। सरकती हुई चीजों को शाश्वत रखने का जो दुराग्रह है वही भय, राग, क्रोध को जन्म देता है।

जो बीत गई सो बीत गई।
तकदीर का शिकवा कौन करे।
जो तीर कमान से निकल गई।
उस तीर का पीछा कौन करे।।

जो लाभ हुआ सो हो गया, जो घाटा हुआ सो हो गया, जो मान मिला सो मिला, अपमान हो गया तो हो गया। काँटा घुस गया तो निकाल कर निश्चिंत हो जाओ। काँटा किसने रखा, क्यों रखा, क्यों घुसा, इसकी चिंता में मत पड़ो। काँटा निकाल कर फेंक दिया तो फेंक दिया। फिर काँटा लगा था...... मैंने निकाल कर फेंक दिया..... ऐसा व्यर्थ चिन्तन मत करो।

ऐसे ही व्यवहार में कई काँटे आयेंगे, लगेंगे, कई बार निकलेंगे, मगर तुम समझते जाओ कि समय की सरिता में सब बहा जा रहा है। इस प्रकार का विवेक जब तुम दृढ़ रखोगे, ज्ञानमय तप के द्वार पर पहुँचोगे तब तुम श्रीकृष्ण के भावको प्राप्त कर लोगे। जहाँ श्रीकृष्ण मस्त हैं वहीं पहुँच जाओगे। वहीं का मतलब बैकुंठ नहीं, द्वारिका नहीं। श्रीकृष्ण मस्त हैं, अपने आप में। इसलिए उन्हें देखकर सब लोग मस्त होते हैं। जो अपने आपमें मस्त नहीं है..... उसे देखकर दूसरे कैसे मस्त हो सकते हैं ?

वीतरागभयक्रोधाः मन्मया मामुपाश्रिताः।

'जिसका राग, भय, क्रोध सर्वथा नष्ट हो गया है, जो मेरे ही परायण और मेरे ही आश्रित रहने वाले हैं.....'

'मेरे परायण' माना कितना भी धन, सत्ता, वस्तुएँ हों, तो साधक समझता है कि यह सब पहले नहीं था, जन्म से पहले इन वस्तुओं की मालकियत मेरी नहीं थी और अभी से पहले इन वस्तुओं की मालकियत मेरी नहीं थी और अभी भी वह नहीं की ओर जा रही हैं। इस प्रकार का उसका विवेक है। वह इन वस्तुओं का उपयोग तो करता है, परंतु इन वस्तुओं का आश्रय नहीं लेता, वस्तुओं पर शाश्वतता की मुहर नहीं लगाता परंतु जन्म से पहले भी जो था, मरने के बाद भी जो हमें शरण में लेता है, उसे मैं मानकर उसमें आराम करता है, तृप्ति पाता है, उसमें प्रतिष्ठित होकर फिर यथायोग्य व्यवहार करता है वह भगवान के आश्रित है।

इन वस्तुओं को न छोड़ना है, न पकड़ना है पर इनका उपयोग करना है। उपयोग किये बिना कोई रहेगा नहीं, उपयोग तो करते हैं मगर आसक्ति से, आस्था से, शाश्वत-बुद्धि से करते हैं।

घर में रहने की मना नहीं है, मगर घर में जो आसक्ति है, तिजोरी के रूपयों में जो आसक्ति है, वह आसक्ति भय देती है।

एक जीवन्मुक्त महात्मा की कुटिया पर डाकूओं ने डाका डाला। डाकूओं के सरदार ने महात्मा से कहाः

"महाराज ! कल ही गुरूपूनम बीती है। हजारों लोग तुम्हारे पास आते जाते हैं। आज हमारी बारी है दक्षिणा लेने की। जो कुछ है माल दे दो।"

महाराज ने कहाः "मैं क्या उठाकर माल दूँ ? यह देखो। यह है मेरी ऊपर की चादर और यह नीचे की चादर। दोनों उतार देता हूँ। मैं कौपीन में बाहर चला जाता हूँ। जो कुछ चाहिए तुम अपना समझकर गठरियाँ बाँधो।"

बाबा तो जीवन्मुक्त थे। माल-असबाब तो सेवकों की समिति संभालती थी। बाबा के पास फूटी दमड़ी भी नहीं थी। बाकी जो था वह शरीर का सामान कुटिया में छोड़कर बाबा तो जाकर टिले पर चढ़ गये और नाचने लगे, पुकारने लगेः

अभी नफे में.... तक धीनाधीन..... अभी नफे में......

डाकूओं को जो कुछ सामान बाँधना था, अपनी रूचि के अनुसार एक दो गठरी बाँध लिया। सरदार ने सोचाः 'बाबाजी कहाँ चले गये ? कहीं कुटिया में फरियाद करने तो नहीं चले गये ?' देखता है तो बाबाजी सामने टीले पर नाच रहे हैं.....

तक धीनाधीन.... अभी नफे में...

डकैतों का सरदार उनके पास गया और बोलाः

"बाबाजी ! क्या बात है ? अभी नफे में है, तो टीले के नीचे धन गाड़ा है ?"

बाबा बोलेः "तो यह भी खोद लो।"

वह सरदार कहता हैः "आपके नाचने का राज क्या है, बताओ।"

बाबा बोलेः "इस दुनिया में आये थे तब कौपीन नहीं थी। आज डाका डालने के लिए तुम आये हो। सब उठाये ले जा रहे हो फिर भी मेरी लंगोटी तो बच गई। उतना तो नफा हो गया। आज तक खाया-पिया वह भी नफे में रह गया। जो कुछ अनुभव किया वह भी नफे में। अब कौपीन तो तुम छीनोगे नहीं।"

बाबाजी की निर्दोष दृष्टि और उदगार से सरदार का दिल भर आया और वह उसके शागिर्दों के साथ गठरियाँ खोलकर माफी माँगने लगा। बाबा ने कहाः

"माफी क्या ? हम नाराज ही नहीं थे।"

जो अपने आप पर ठीक से राजी है उस पर डकैत भी राजी हो जाते हैं। जो अपने आप में राजी नहीं है उसकी मेमसाब भी नाराज हो जाती है और मिस्टर भी नाराज हो जाता है, साहब भी नाराज हो जाते हैं।

राग, भय, क्रोध क्यों आता है ?

नश्वर वस्तु में आसक्ति से राग, भय, और क्रोध होता है। ये वस्तुएँ, यह पद मेरा बने रहे.... यह राग है। भोग की चिन्ता, भोगों को पाना, सँभालना और उनके लिये पचपचकर मरना यह मूढ़ भोक्ता के लक्षण हैं। आदर्श भोक्ता अपने आपमें तृप्त रहता है। भोग खिंचकर उसके पास चले आते हैं। वह उन पर एहसान करता है, मौज आयी तो भोगों का उपयोग कर लेता है नहीं तो बेपरवाह रहता है। वही आदर्श भोक्ता है। आदर्श भोक्ता के पीछे भोग मँडराते हैं। मूढ़ भोक्ता भोगों के लिए पीछे भागता है। आदर्श भोक्ता को पता होता है कि भोगों के लिए हम नहीं है, भोग हमारे लिए हैं। नश्वर संसार के लिए मैं अपना आत्मघात नहीं करूँगा।

सूर्य को पीठ देकर तुम छाया पकड़ने जाओ तो छाया कितनी तुम्हारी हाथ आयेगी पता है? आजमाकर देखना। छाया को पीठ देकर सूरज की ओर चलो फिर देखो, छाया तुम्हारे पीछे कैसे चली आती है बिना बुलाये ! जो सूरज की ओर भागता है, छाया उसकी अनुगामिनी बन जाती है और जो सूर्य को पीठ देकर छाया की ओर भागता है, छाया भी उससे दूर भागती है। ऐसे ही आंतरिक सुख का त्याग करके बाहर की छाया जैसी परिस्थितियों को थामना चाहते हैं और उनको पकड़ रखना चाहते हैं उन मूढ़मना लोगों की हालत दयाजनक रहती है।

अगर कोई बाहर की परिस्थितियों को पकड़कर चीज-वस्तुओं को एकत्रित करके ढेर लगाकर, सत्ता की कुर्सियाँ सँभालकर, रूप-लावण्य के लिए, पफ, पावडर, लिपस्टीक के बक्से जमा कर सुखी होना चाहता है तो समझो कि वह अग्नि में कूदकर ठंडक चाहता है। आज तक ऐसा कोई आदमी सुखी मिला नहीं। हर्षित मिलेगा थोड़ी देर के लिए, और उतना ही वह खिन्न, विकृत स्वभाव का एवं अशांत होगा। जितना-जितना बाहर के साधनों से सुख लेने का आग्रह रहेगा उतना-उतना उसके अंदर भय, क्रोध, इच्छा, वासना, उद्वेग..... यह सारा कचरा होगा ही।

जैसे मांस के टुकड़े को लेकर चीलें आपस में लड़ती हैं, वैसे ही भोगों को देखकर ऐसे आदमी एक दूसरे से लड़ पड़ते हैं।

'मन्मया' होने के लिए इन भोगों का, वस्तुओं का सदुपयोग करना चाहिए। शरीर पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा और शरीर है पाँच भूतों का, प्रकृति का। संसार की वस्तुएँ भी प्रकृति की हैं। शरीर को संसार की सेवा में लगाओ। भोगों का सदुपयोग सेवा में करके अपनी निष्कामता बढ़ा दो। इससे शीघ्र ही **'मन्मया'** हो जाओगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निष्कामता और ईशप्राप्ति

जीव को शास्त्र रूपी, श्रुति रूपी माता कहती हैः विश्वनियंता को यदि मिलना हो तो तुम जो कर्म करते हो उसे केवल फल की आसक्ति को छोड़कर करो। इससे तुम परमात्मा के नजदीक

जाओगे और वह तुम्हें गोदी में ले लेगा। फिर जिस ज्ञान में, प्रेम में, अमरता में स्वयं विराजता है उसका तिलक तुम्हें करेगा और तुम्हें वह राज्य सौंप देगा। निष्काम कर्म अन्तःकरण की ऐसी दिव्य अवस्था ला देता है कि फिर विचार नहीं करना पड़ता कि सांख्य क्या कहता है, वेद क्या कहते हैं, उपनिषद क्या कहती है। निष्कामता से ऐसा आनंद और ऐसी योग्यता आती है कि थोड़ा-सा उपदेश भी हृदय में प्रसारित हो जाता है।

कितने ही लोग पूछते हैं कि माला करने से क्या लाभ ?

चैतन्य महाप्रभु के पास एक सेठ ने जाकर पूछाः

"आप कहते हैं कि 'हरि-हरि बोल' कह कर हाथ ऊँचे करो। भगवान का कीर्तन करो। तो ऐसा करने से क्या लाभ होता है ?"

सुनकर गौरांग रोने लगे।

"महाराज ! रोते क्यों हो ?"

तब गौरांग बोलेः "आज तक मैंने तुम्हारे जैसा स्वार्थी नहीं देखा कि जो भजन करने भी लाभ ही ढूँढता हो। आज मैंने कौन-सा पाप किया कि मुझे तुम्हारी मुलाकात हुई ? क्या नश्वर लाभ के लिए ही तेरा जन्म हुआ है ? हरि का भजन करना यह तेरा कर्त्तव्य नहीं है ? तेरा स्वभाव नहीं है ? सुखी और आनंदित रहना यह तेरा स्वभाव नहीं है ? अमर होना यह तेरा स्वभाव नहीं है ? बाकी के लाभ तो सब मरने वाले लाभ हैं। भजन करोगे तो तुम तुम्हारे स्वभाव में जग जाओगे और स्वभाव में जग जाने जैसा लाभ दुनिया में दूसरा कोई हो नहीं सकता। 'माला करने से कौन-सा लाभ होता है ? नौकरी मिलेगी ? यह होगा ? वह होगा ? ना.... ना..... ये सब लाभ नहीं हैं। ये सब तो बँधन की रस्सियाँ हैं, फाँसियाँ हैं। जिन्हें तुम आज तक लाभ मान बैठे हो वे लाभ नहीं, फाँसे हैं।"

स्वामी रामतीर्थ प्रार्थना करते थेः "हे परमात्मा ! हे ईश्वर ! तुम मुझे सुखों से बचाओ, मुझे सांसारिक लाभों से बचाओ, मुझे मित्रों से बचाओ।"

पूरणसिंह को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहाः

"महाराज ! आपकी प्रार्थना में भूल हो रही है। 'मुझे दुःखों से बचाओ, शत्रुओं से बचाओ' ऐसा कहने के बदले आप कहते हैं कि 'मुझे सुखों से बचाओ, मित्रों से बचाओ।' ऐसा क्यों ?"

रामतीर्थः "मैं ठीक कहता हूँ। क्योंकि शत्रुओं में आसक्ति नहीं होती, मित्रों में आसक्ति होती है। शत्रु समय नहीं बिगाड़ते, वे तो समय बचाते हैं। मित्र तो अपने होकर समय बिगाड़ते हैं। ऐसे ही दुःख में विवेक जगता है। दुःख ही परमात्मा की प्यास जगाता है। दुःख तो प्रेम की पुकार कराता है, प्रेमास्पद के द्वार खटखटाने की योग्यता देता है। संसार के सुख से विवेक मर जाता है।"

कोई कहे कि, 'मैं भजन करता हूँ और मुझे इतना दुःख क्यों ?' यदि तुम वास्तव में माला और भजन करते हो तुम्हारे जीवन में फरियाद नहीं होनी चाहिए।

परन्तु जो भजन नहीं करते वे सुखी हैं और मैं दुःखी हूँ।

भजन का अर्थ है समता, त्याग। जो लोग सुखी हैं उनको देखकर तुम्हें विषमता होती है। तुम्हें होता है कि मैं भजन करता हूँ और मुझे ऐसा सुख नहीं मिलता। यह भजन का फल नहीं है। यह तो स्वार्थ है। एक तो ईर्ष्या का दोष तुममें आता है और दूसरा, बाहर के नश्वर सुख की इच्छा आयी। यह तो तुम किराये पर भजन करते हो। सच्चा भजन नहीं करते। यदि तुम सच्चा भजन करो तो तुम्हारे चित्त में फरियाद न हो और तुम्हारी अपनी तो बात ही क्या है ? तुम्हारी दृष्टि पड़े तो वे लोग सुखी होने लगें। बाहर के नश्वर पदार्थ न हों तो उनके हृदय में सुख की तरंगे उछलने लगे। तुम निष्काम भजन करो, निष्काम ध्यान करो, निष्काम तत्त्व का अन्वेषण करो तो तुम्हारी इस नश्वर आँख में भी ऐसी शक्ति आ जाये कि सामने वाले के शाश्वत के द्वार खुलने लगे। हे जीव ! तुझमें इतनी ताकत है।

मानव ! तुझे नहीं याद क्या ?
तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है।
सदब्रह्म तेरा वंश है।
संसार तेरा घर नहीं।
दो चार दिन रहना यहाँ।
कर याद अपने राज्य की।
स्वराज्य निष्कंटक जहाँ।।

तेरा स्वराज्य निष्कंटक है। यहाँ तो प्रधानमंत्री की एक ही कुर्सी है पर तेरे स्वराज्य में तो जितने हृदय हैं उतनी आत्म-साक्षात्कार की कुर्सियाँ हैं। यहाँ किसी की टाँग खींचने की बात ही नहीं है। राजनीति में यदि एक आगे बढ़ता है तो दूसरा उसकी टाँग खींचता है पर आध्यात्मिकता में कोई आगे बढ़े तो किसी की टाँग खीँचने की जरूरत पड़े ही नहीं। बल्कि ऊपर से सबको उत्साह मिले कि उसे मिला है तो वह हमें भी मिल सकता है। उसके हृदय में भगवान प्रगट हुए हैं तो मेरे हृदय में भी भगवान प्रगट हो सकते हैं।

धर्म के मार्ग पर चलने वाले लोगों में ईर्ष्या और द्वेष के लिए स्थान नहीं है जबकि बाहर के सुख में लिप्त मनुष्यों में ईर्ष्या और द्वेष के सिवाय और मिलेगा भी क्या ? बाहर के साधनों से जो मित्रता है उसमें ईर्ष्या, द्वेष, भय, क्रोध, स्पर्धा और अशांति रहेगी ही, सत्त्वगुण बढ़ेगा तो उसकी मात्रा कम होगी। रजोगुण बढ़ेगा तो उसकी मात्रा थोड़ी बढ़ेगी और तमोगुण हो तो फिर अंधकार बढ़ जाएगा। बाकी यह सब तो रहने ही वाला है।

खून पसीना बहाता जा, तान के चादर सोता जा।
यह नाव तो हिलती जायेगी, तू हँसता जा या रोता जा।।

एक सिद्ध पुरूष वृन्दावन में थे। उनके पास एक युवक योगी योग की साधना से संपन्न होकर पहुँचा बातचीत हुई। उपस्थित भक्तों में से एक बोलाः

"चुनाव हुआ। अमुक उम्मीदवार जीत गया।"

दूसरा बोलाः "रहने भी दो, कौए तो सभी जगह काले ही होते हैं। अगर अमुक उम्मीदवार आया होगा तो अपने राज्य में अच्छा होता।"

ऐसी बातें चल रही थीं तो उस युवक योगी ने आत्मज्ञानी सिद्ध पुरूष से पूछाः

"बाबाजी ! कैसा राज्य हो ? कैसी दुनिया हो तो आप सन्तुष्ट हों ?"

सिद्ध पुरूष ने कहाः "जो बनायी हुई वस्तु होती है उसमें शाश्वत संतोष कैसे हो सकता है? बनी हुई वस्तु में संतोष हो ही नहीं सकता। उपरामता आती है, थकान लगती है। संतोष तो जो सदा शुद्ध है उसमें विश्रांति पायें तो ही हो सकता है। बाकी परिस्थितियाँ तो चाहे जितनी बनें, उसमें संतोष नहीं होगा। लोभ बढ़ेगा, इच्छाएँ बढेंगी, वासना बढ़ेगी, संतोष नहीं होगा। संतोष तो स्व-आत्मा में ही होगा और कहीं न होगा।"

तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा हैः

निज सुख बिन मन होवै कि थिरा।

निज के अपनी आत्मा के सुख के बिना कभी संतोष आता ही नहीं है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः यो मद् भक्तः स मे प्रियः।।

जो योगी पुरूष है वह हमेशा संतुष्ट है। भोगी कभी हमेशा संतुष्ट नहीं रह सकता।

जिसने मेरे स्वरूप को खोजा है, मन और बुद्धि मेरे से स्फुरित होते हैं ऐसा जिसे ज्ञान हो गया है, ऐसा जिसे प्रेम का प्रसाद मिल गया है, अमरता का आनंद मिल गया है वही सतत संतुष्ट है। चाहे जितना भी पाओ, चाहे जितना रूप के, लावण्य के, धन के, सत्ता के ऊँचे शिखरों पर पहुँच जाओ, पर नीचे के शिखरों के आगे ही तुम्हारा शिखर ऊँचा लगेगा। यह अहंकार का सुख है, आत्मा का सुख नहीं है। तुम्हारा शिखर जब ऊँचा होगा तब दूसरे को ईर्ष्या होगी और उसे तोड़ने के लिए दूसरे प्रयत्न करेंगे। पत्थर फैंकने लगेंगे। यदि दूसरे का शिखर ऊँचा दिखेगा तो तुम सिकुड़ने लगोगे। चपरासी के आगे क्लर्क ऊँचा होता है पर बड़े साहब के आगे जाने पर क्लर्क सिकुड़ने लगता है। अंत में क्या ?

नारायण....... नारायण..... नारायण.....

ईश्वर को अलग मानना, पराया मानना, देशदेशांतर में मानना यह एक बड़ा पाप है जबकि दूसरे सब पाप मिलकर आधे पाप हैं। ईश्वर को अपना स्वरूप मानना, अपने समीप मानना यह एक पूरा पुण्य है। फिर सत्कृत्य, धारणा, ध्यान, सेवा, जप, तप... ये सब मिलकर आधा पुण्य होता है।

ईश्वर को पराया न समझें, दूर न समझें, 'मुझे नहीं मिलेंगे' ऐसा न मानें। बड़े में बड़ी भूल यह है कि हम मानते हैं कि हम अधिकारी नहीं है, हमें क्या ईश्वर मिलते होंगे ? पर तुम्हारा यह अंतर्यामी तुमसे एक मिनट भी दूर जा सके ऐसी उसके बाप के पास भी ताकत नहीं है और तुम उससे दूर हो सको ये तुम्हारे बाप की भी ताकत नहीं है। क्यों भाई साहब ! समझ में न आये फिर भी यह सच्ची बात है। जैसे तुम आकाश से अलग नहीं हो सकते और आकाश तुमसे अलग नहीं हो सकता, वैसे ही चिदाकाश स्वरूप परब्रह्म परमात्मा के साथ तुम्हारा संबंध है। पर दुर्भाग्य की बात यह है कि इतने पास होते हुए भी आज तक मुलाकात नही हुई। एक सेकण्ड के हजारवें भाग जितने समय तक भी परमात्मा तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता। तुम चाहो तो तुम भी उसका त्याग नहीं कर सकते। उसकी सत्ता के कारण ही नश्वर संसार की परिस्थितियाँ सच्ची लगती हैं।

चलती चक्की देख के दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।।

दिन और रात रूपी काल की चक्की में सब पिसते जाते हैं किन्तु कबीर जी कहते हैं-

चक्की चले तो चलन दे तू काहे को रोय।
लगा रहे तू कील से बाल न बांको होय।।

तुम अपने निज ज्ञानस्वरूप, निज प्रेमस्वरूप कील से चिपके रहो। फिर प्रकृति का शरीर चलता हो तो भले चले, मनुभाई (मन) चलता हो तो भले चले, शरीर जल जाये तो भले जल जाये। हजारबार मृत्यु हुई पर तुम्हारा कुछ बिगड़ा नहीं है तो अब मृत्यु होगी तो क्या बिगड़ेगा ?

निर्भय जपे सकल भव मिटे।
संत कृपा ते प्राणी छूटे।।

निर्भय तत्त्व का ज्ञान हो जाये, स्मृति आ जाये तो सभी भय टल जायें। अभी समाज में भय, घृणा, ईर्ष्या आदि व्याप्त है, क्योंकि ईश्वर पर भरोसा नहीं है। बड़े में बड़ी भूल यही है, और यदि भरोसा है तो वह यह है कि 'ईश्वर हमारे से दूर है' ऐसा भूत घुस गया है। जगत के पदार्थों का दिखावा और आसक्ति बढ़ती जाती है। उससे भय, ईर्ष्या का जन्म होता है। उच्च कक्षा के लोग जैसे-जैसे ब्रह्मवेत्ता की सीखों की अवहेलना करते गये वैसे-वैसे उनके क्षुद्र विचारों से, निर्णयों से समाज और सब लोग फँस गये। जिनके पास उदात्त विचार हैं, जिनके पास समता का साम्राज्य है, ऐसे महापुरूषों के पास सत्ता नहीं है और जिनके पास सत्ता है उनके पास आत्मज्ञान के विचार नहीं हैं, समता के विचार नहीं हैं, साक्षात्कार का अनुभव नहीं है, अद्वैतनिष्ठा नहीं है। इसीलिए यह सब उलट पुलट होता है। जनता दुःखी है इसका कारण चीजों का दुरूपयोग और दुर्व्यवस्था है। फिर भी भारत के ऋषियों को हजार-हजार प्रणाम हैं। ऐसी दुःखद परिस्थिति में भी जो आनंद साधक और सत्संगी लोग पा रहे हैं वह परदेश के लोगों के चेहरे पर नहीं देखने को मिलता। स्वीजरलैंड में मैंने देखा कि वहाँ नेताओं के पाँच-पाँच करोड़ रूपयों के बंगले हैं, पर वहाँ

के लोगों के चेहरे पर इतनी प्रसन्नता नहीं है जितनी भारत के 1200 रूपये कमाने वाले के चेहरे पर हैं। यह भारत के दिव्य ज्ञान की, ऋषियों के ज्ञान की, गीता के ज्ञान की परंपरा है। कन्हैया की बँसी की कृपा है।

कभी-कभी मेरे गुरूदेव का चिंतन होता है और गुरूदेव के प्रसंगों को यदि मैं कहने बैठूँ तो मेरा हृदय भावविभोर हो जाता है। हजारों माताओं ने गर्भ में पोषण किया, बाहर लालन-पालन किया परन्तु हजारों जन्म की माताएँ जो न दे सकीं वह गुरूदेव ने हँसते-हँसते दिया। उनके विषय में कुछ कहने जायें तो हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। दृष्टिमात्र से ऐसे पुरूष जो दे सकते हैं वह दुनियादार नहीं दे सकते।

मेरे गुरूदेव ! ईश्वरीय दृष्टिपात से निहाल करने वाले ! जादुई नजर लगाकर चले गये। उनके वचन मेरे हृदय को विश्रान्ति दे गये, मेरी थकान मिटा गये। अब बारम्बार उनकी याद करके सौ-सौ आँसू बहाकर मैं उनकी कृपा की तरफ निहार रहा हूँ। अब उनकी याद ही मेरे पास बाकी है। उनकी स्मृति सीखें और उनका आत्मधन मेरे पास बाकी है और वह शाश्वत है।

यदि एक सैकेण्ड के लिए भी तुम शुद्ध चैतन्य की अवस्था में आ जाओ तो उसका सामर्थ्य कितना है उसका वर्णन हो सके ऐसा नहीं है। तुम्हारे उस शुद्ध स्वभाव में अनुपम सामर्थ्य है। इसीलिए विश्वामित्र जैसे ऋषि सृष्टि की रचना कर सकते हैं। त्रिशंकु के लिए आकाश में स्थान बना दिया। दूसरे ऋषियों ने भी अनेक चमत्कार कर दिखाये। वेदव्यासजी ने संजय को दिव्य दृष्टि दे दी। प्रतिस्मृति विद्या से महाभारत के युद्ध में स्वर्गस्थ हुए लोगों की गंगा की खड़बड़ाहट में से प्रगटाकर उनके कुटुम्बियों के साथ बातचीत करा दी, यह सब कहाँ से आता है? शाश्वत प्रेम, शाश्वत जीवन और शाश्वत ज्ञान जहाँ है वहाँ से यह सब आता है और उससे ही यह नश्वर जगत और प्रेम चल रहा है। यह परमात्मा कोई आकाश-पाताल में नहीं, बिल्कुल नजदीक है फिर भी उसमें प्रवेश नहीं मिलता। इसका कारण है कि इन्द्रियों का स्वभाव बहिर्मुख है। हमारे दिमाग में ऐसी भ्रान्ति है कि बाहर से कोई देव चलने की शक्ति दे जाता है। वास्तव में देव में भी शक्ति उसी की है और गुरूजी में भी शक्ति उसी की है। गुरू के आशीर्वाद फलते हैं। सात्विक व्यक्तियों के संकल्प फलते हैं वह देव हमारे हृदय में उतने का उतना ही स्थित है। परंतु हमारी अपनी अक्ल नहीं और शास्त्रों की बात मानते नहीं।

श्वासोच्छवास को तालबद्ध करते जाओ। उससे तुमको जो आराम मिलेगा यह आराम नींद के आराम से अलग ही है। आज तक तुम्हें ऐसा आराम नहीं मिला होगा जो तुम्हें तुम्हारे निज स्वरूप के स्वतंत्र सुख के मिलने पर मिलेगा। और यह आराम जब लेना चाहो तब ले सकोगे। फिल्म का सुख स्वतंत्र नहीं है। कुर्सी और पैसे का सुख स्वतन्त्र नहीं है जबकि यह आत्मसुख तो स्वतंत्र सुख है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनन्य भक्ति

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ न्नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

'हे पृथानन्दन ! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगी के लिए मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसको सुलभता से प्राप्त हो जाता है।'

(भगवद् गीताः 8.14)

जिसका चित्त भगवान को छोड़कर अन्य किसी भोग, विलास अथवा ऐश्वर्य में किंचित् मात्र में भी नहीं जाता अर्थात जिसके अन्तःकरण में ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य के प्रति कोई आश्रय भाव नहीं है, वह अनन्य चित्तवाला है।

जैसे सत्पुत्र पिता की शरण में होता है, पतिव्रता स्त्री पति की शरण में होती है और सत्शिष्य सदगुरू की शरण में होता है, ठीक उसी तरह भक्त भी भगवान की शरण में होता है।

पिता में अगर अहोभाव है तो अपनी इच्छा और वासना छूटती है, अगर पति में अहोभाव है तो पति की इच्छा में अपनी इच्छा मिलाई जाती है और भगवान तथा गुरू में अगर अहोभाव है तो अपनी इच्छा और वासना भगवान और गुरू के चरणों में अर्पित कर दी जाती है।

स्पष्ट है कि आपकी तुच्छ संसारी इच्छाएँ, वासनाएँ ही आपको कष्ट देती हैं। यदि ईश्वर के साथ अथवा इष्ट या गुरू के साथ आपका अनन्य भाव, दृढ़ भाव जुड़ जाए तो आपकी इच्छा-वासनाओं का प्रवाह परिवर्तित हो सकता है।

नित्य निरन्तर अनन्य भाव से चलने पर ईश्वर की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। पार्वती तप करने के लिए नारदजी की सलाह से अनन्य भाव से बैठ गई तो उन्हें तप का ऐसा फल मिला और तप इतना फला कि अन्त में भगवान सदाशिव को पार्वती की कसौटी करने के लिए सप्तर्षि जैसे महामुनियों को भेजना पड़ा।

सप्तर्षि पुराणों, शास्त्रों और लोकोक्ति के अनेकानेक उदाहरण दे-देकर पार्वती की श्रद्धा डगमगाने का प्रयास कर रहे हैं।

"तू क्यों भभूत रमाये हुए, मुण्डों की माला पहने हुए, व्याघ्रचर्म पहनने वाले और सर्प गले में लटकाने वाले को प्राप्त करने के लिए तप करके अपना यौवन, अपना सौन्दर्य और अपना शरीर सुखा रही है ? इससे तो अच्छा होता कि तू भगवान नारायण को वरती। खैर, जो हुआ सो हुआ। तू अभी भी स्त्रीहठ छोड़कर हमारी बात मान ले। हम अभी भी वैकुण्ठाधिपति के साथ तेरा विवाह करवा कर तेरी जिंदगी सँवार देंगे।"

इस प्रकार भाँति-भाँति के अनगिनत दृष्टान्त व प्रलोभव दिये गये। पार्वती जी अनादर तो नहीं करती क्योंकि सप्तर्षि हैं, उच्च कोटि के महापुरूष हैं परंतु आखिर में कहती हैः

"मेरे गुरूदेव देवर्षि नारद ने मार्गदर्शन नहीं दिया था उस समय अगर आप मार्गदर्शन देने पधारते तो कदाचित मैं ऐसा निर्णय कर लेती लेकिन अभी तो मैंने एक बार निर्णय कर लिया है, अब मैं नहीं छोड़ूँगी।"

तब सप्तर्षि कहते हैं- "साधना-तप करते-करते तुझे कई वर्ष बीत गये लेकिन शिवजी तो तेरा हाल-चाल पूछने आते ही नहीं।"

पार्वती कहती हैः "कई वर्ष तो क्या, सैंकड़ों-हजारों, लाखों, करोड़ों वर्ष भी बीत जाएँ तो भी मुझे परवाह नहीं लेकिन मैं लगी रहूँगी। करोड़ों जन्मों तक मेरा यही प्रयास रहेगा कि मैं पाऊँगी तो शंभु को ही पाऊँगी।"

कोटि जन्म लगी रगर हमारी।
वरऊँ तो शंभु न तो रहऊँ कुमारी।।

जिसका चित्त दान से, पुण्य से, जप से, सेवा से, सुमिरन से पवित्र हुआ है ऐसे लोगों को आत्मा-परमात्मा की प्राप्ति के लिए अगर तीव्र लगन हो और किसी ब्रह्मवेत्ता महापुरूष की आज्ञा में अपनी इच्छा मिला दे तो उसको थोड़े ही महीनों मैं अथवा थोड़े ही वर्षों में ऐसा पद प्राप्त हो जाता है कि उस पद के आगे इन्द्र का पद भी छोटा हो जाता है, उस लाभ के आगे पृथ्वी का तो क्या स्वर्ग का लाभ भी तुच्छ हो जाता है।

पीत्वा ब्रह्मरस योगिनो भूत्वा उन्मतः।
इन्द्रोऽपि रंकवत् भासयेत् अन्यस्य का वार्ता।।
तीन टूक कौपिन की भाजी बिना लूण।
तुलसी हृदय रघुवीर बसे तो इन्द्र बापड़ो कूण।।

ऐसा आत्मपद पाने के लिए भगवान और भगवत्प्राप्त महापुरूषों के प्रति अनन्य भाव होना आवश्यक है।

अनन्य भाव अर्थात् दुनिया के सब लोग मिलकर अथवा सप्तर्षि जैसे उच्च पुरूष भी आकर हमारी श्रद्धा को हिलाये तो हमारे भीतर से यह आवाज आये किः

हमें रोक सके ये जमाने में दम नहीं।
हमसे है जमाना, जमाने से हम नहीं।।

हृषिकेश से आगे किसी गुफा में तेजानन्द नाम के 90 वर्षीय एक वृद्ध संत रहते थे। उनके पास कोई जाता किः "महाराज ! मुझे दीक्षा दीजिए।" तो दीक्षा लेने आने वालों से वे कहा करते थेः

"पहले साधु, मंडलेश्वर, महामंडलेश्वर सबके यहाँ घूमकर आओ। अगर मुझसे दीक्षा ली और खिसके तो फिर बड़ा खतरनाक काम होगा। न इधर के रहोगे, न उधर के रहोगे।"

वे चुन-चुन कर दीक्षा देते थे। इसका कारण यह था कि अपनी अनुभूतियों से वे जान चुके थे कि कई लोग दीक्षा लेने के बाद उसका मूल्य नहीं समझते और उनकी दीक्षा कृपा को इधर-उधर बिखेर देते थे, इसलिए वे कसौटी पर खरे उतरने वाले को ही प्रायः दीक्षा देते थे।

यदा-कदा वे अपने भक्तों के देहातों में भी जाया करते थे। एक बार अपने कुछ शिष्यों को साथ लेकर वे कहीं जा रहे थे। रास्तें में उन्होंने एक किसान के खेत में चार-पाँच कुएँ खुदे हुए देखे। उन्होंने खेत का भ्रमण किया फिर किसान से पूछाः "क्यों भाई ! ये इतने सारे कुएँ तूने क्यों खोद रखे हैं?"

किसान बोलाः "महाराज ! यहाँ दस हाथ खोदा फिर भी पानी नहीं आया तो वहाँ पर बारह हाथ गहरा किया, लेकिन वहाँ भी पानी न मिला तो फिर यहाँ नौ हाथ, और यहाँ भी नहीं मिला तो वहाँ, वहाँ से वहाँ....।"

उन महात्मा ने आगे बढ़कर अपने शिष्यों को बताया किः "अगर इस किसान जैसे बेवकूफ बन गये और यहाँ नहीं तो वहाँ के चक्कर में पड़ गये तो जिन्दगी खत्म हो जाएगी खुदाई करते-करते, लेकिन पानी नहीं मिलेगा।"

मार्गदर्शन मिल गया है, अब तुम चल पड़ो ईश्वर के मार्ग पर। इधर-उधर झाँको मत।

कई लोग उपासना करते-करते इधर-उधर निहारते हुए आगे बढ़ते हैं लेकिन कइयों को तो मार्गदर्शन मिलता है और साधना करते हैं फिर साधना छोड़कर 'इसको राजी रखूँ, उसको राजी रखूँ, इससे मिलूँ....' के चक्कर में रह जाते हैं।

अरे ! इससे उससे मिलने में ही समय गँवाएगा तो अपने आप से कब मिलेगा ? भीतर मिलने वाले उस यार से तू कब मिलेगा ? जिन्दगी क्यों बरबाद करता है....? वक्त बहुत कम है और काम बहुत जरूरी है। अगर नहीं किया तो फिर बहुत तकलीफ होगी भैया !

कबीर जी ने चकवा चकवी की कल्पना करके एक बात समझाई हैः

साँझ पड़ी दिन आथमा दिना चकवी रोय।
चलो चकवा वहाँ जाइये जहाँ दिवस रैन न होय।।

सन्ध्या के समय जब दिन अस्त होता है, चकवी रोने लगती है और अपने प्रियतम चकवे से कहती हैं कि चलो चलें जहाँ कभी रात आवे ही नहीं। तब चकवा उसे समझाता हैः "पगली ! साँझ पड़ती है तो हम अपने-अपने घोंसले में चले जाते हैं, स्थायी जुदा नहीं हो रहे हैं, जो तू रोती है। चिन्ता मत कर.... प्रातः की मधुर बेला में हर रोज हमारा मिलन होता है।

कबीर जी कहते हैं- "जो मनुष्य जन्म पाकर भी अपने प्रियतम से, परमात्मा से, परमात्मा के प्यारे संतों, गुरूतत्त्व से नहीं मिला तो फिर न दिवस को मिलेगा, न रात्रि को न सुबह मिलेगा, न शाम को मिलेगा।"

चकवा कहता हैः

रैन की बिछड़ी चाकवी आन मिले प्रभात।

सत्य का बिछड़ा मानखा दिवस मिले नहीं रात।।

तू अपने सत्य स्वरूप में अनन्य भाव कर..... अपने सत्य स्वरूप को पाने के लिए जप, तप, सुमिरन कर। उठते-बैठते श्रद्धा-भक्ति से सदगुरू के मार्गदर्शन के अनुरूप दृष्टि बना, खानपान और वाहवाही का गुलाम मत बन। यह शरीर अग्नि की लपटों से जलकर भस्म हो जाये उसके पहले तू अपनी इच्छा-वासना को जलाकर अविनाशी पद को प्राप्त कर ले। अगर ऐसा कर दिखाया तो तेरा तो काम बन ही गया, जो तुझे याद करेंगे उनका भी काम बनता जायेगा। वत्स ! चार दिन की जिन्दगी मिली है, तू ऐसा जी कि.....

तू जिन्दगी जी तो ऐसी जी कि सदा दिलशाद रहे।
तू जहाँ से चला जाए तो दुनिया को तेरी याद रहे।।

चाय चाहिए तो चाय पर लपके, शराब चाहिए तो शराब पर लपके, पिक्चर की इच्छा हुई तो थियेटर में घुसे, सिगरेट की इच्छा हुई तो फूँक मारी..... यह भी कोई जीवन है क्या ?

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

इसी प्रकार आप भी अपने चित्त को अन्य अन्य में अनन्य का दीदार कराओ। जैसे पतिव्रता स्त्री सास-ससुर, जेठ-जेठानी आदि सबकी सेवा-सुश्रुषा करती है, वह सब अपने पति के कुटुम्बी होने के नाते। ऐसे ही साधक भी अपने इष्ट या गुरू को अपना तारणहार समझकर उसमें अनन्य भाव रखें और दूसरे इष्टों के, दूसरे भगवानों के चित्रों को वह अपने इष्ट का ही स्वरूप समझे परंतु प्रीति अपने इष्ट में, अपने गुरूतत्त्व में ही रखे।

जिसके घर में, जिसके पूजा के मंदिर में बहुत सारे फोटो आते हैं उसकी भक्ति अनन्य नहीं हो सकती, क्योंकि पूजा की जगह पर इसको.... उसको.... सब देवी-देवताओं को फल फूल अक्षत चढ़ाने, प्रणाम-आरती करने के बाद भी मन में यह भावना रहती है कि कभी ये देवता काम न आये तो वे आ जाएँगे, ये नहीं तो वे आ जाएँगे..... इस प्रकार की भक्ति अव्यभिचारिणी नहीं, व्यभिचारिणी भक्ति है, बदलने वाली भक्ति है।

दृढ़ भक्ति के कारण तो धन्नाजाट जैसे साधारण युवक को सिलबट्टे से भगवान का दीदार हो सकता है तो आपकी दृढ़भक्ति अगर आत्मा में हो जाए तो परमात्मा का दीदार होना क्या कोई कठिन कार्य है ?

कबीर जी ने कहा हैः

जितना हेत हराम में, उतना हरि से होय।
कहे कबीर वा संत को पला न पकड़े कोय।।

जितनी प्रीति इन नश्वर वस्तुओं में है, जितना मजा जितनी चालबाजी, चतुराई, इधर-उधर के मखोलों में आती है उतनी अगर हरिरस में आती तो कोई तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ ही नहीं सकता। यहाँ तक कि मृत्यु के बाप की भी ताकत नहीं कि वह तुम्हें परेशान कर सके।

कभी बेइज्जती का डर तो कभी मौत का डर कभी निर्धनता का डर तो कभी निन्दा का डर, कभी किसी से डरते हो तो कभी किसी से सिकुड़ते हो। सिकुड़ते, डरते, चीखते, गिड़गिड़ाते, पीछे-पीछे भागते, वाह वाह करते, हीं-हीं करते न जाने कितनी कलाएँ करते हो, न जाने किनकी खुशामद करते हो.....!

अरे.....! खुशामद करनी है तो एक उस यार, दिलदार की कर ले कि तू आबाद हो जाय...!

आप जितना ईश्वर के प्रति अनन्य भाव रखकर उसका आदर करते हैं, जितना सत्संग का आदर करते हैं, जितना गीता का, श्रीकृष्ण के पावन वचनों का आदर करते हैं उतना ही आप सचमुच में अपना आदर करते हैं। किन्तु जितना आप देह का आदर करते हैं, स्वादों का आदर करते हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों को महत्त्व देते हैं अथवा निन्दा-चुगली का आदर करते हैं उतना ही आप अपना अनादर करते हैं।

कहने का आशय यह है कि जितना आप अपना आदर करते हैं उतना ही इन विकारों का अनादर हो जाता है और निर्विकारी नारायण का साक्षात्कार करके आप धन्य हो जाते हैं।

जैसे सुबह का उदित हुआ, शाम को अस्त होता हुआ सूर्य एवं इन्द्रधनुष देखना-दिखाना हितकर नहीं है ऐसे ही अपने को विकारों में गिरना हितकर नहीं है।

नीतिशास्त्र में अनेकानेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे जो आपकी तन्दुरूस्ती के रक्षक हैं। आरोग्यशास्त्र में भी आता है कि आप भोजन के बाद क्षौरक्रिया न करावें, दाढ़ी-बाल न कटावें। अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या के दिन भी क्षौर न करायें। श्राद्ध पक्ष में कदापि संसार व्यवहार न करें। मैं तो यही कहना चाहूँगा कि केवल तेजस्वी संतान को जन्म देने के लिए ही संसार व्यवहार करें। शेष अपनी जीवनशक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए 'यौवन सुरक्षा' नामक पुस्तक का बार-बार गहराई से अध्ययन करें। पति अपनी पत्नी को पढ़ावे और पत्नी पति को पढ़ावे।

अपने जीवन का आदर व मूल्य आप न करेंगे तो दूसरा कौन करेगा ? कब तक करेगा ? जिस किसी ने भी अपने जीवन का मूल्य आँका है, वह चाहे इस देश में हो या परदेश में हो, वह पूजा जाता है।

जिसस क्राईस्ट ने काशी और कश्मीर में भारत के योगियों और विद्वानों का सम्पर्क किया, उन्हीं की कृपा से जिसस क्राईस्ट रोम में गये तो वहाँ के लोगों ने उनका सत्कार किया। उनके सम्मान में पूरा नगर सजाया गया क्योंकि ईश्वर को प्राप्त महापुरूष आ रहे थे। उनके सम्पर्क में आने वालों की मनोकामनाएँ पूर्ण होती थी।

जिसस के भक्तों की श्रृंखला में मेकडेलिन नाम की एक वेश्या भी थी। वह एक बार बहुमूल्य इत्र की आधी बाल्टी भर के जिसस के पास उनके पैर धोने के लिए पहुँची।

जिसस के इर्दगिर्द जो चतुर आदमी रहे होंगे उन्होंने मेकडेलिन को समझायाः "तू क्यों व्यर्थ में इतना रूपया बरबाद कर रही है ? इससे तो अच्छा होता कि तू गरीबों के लिए कुछ दान कर देती। हजारों रूपये की चीज तू पैर धोकर क्यों बरबाद कर रही है ?"

तब जिसस ने कहाः "गरीब तो पृथ्वी पर आते रहेंगे और गरीबों को खिलाने वाले धनवान भी पृथ्वी पर आते रहेंगे लेकिन ऐसा दूल्हा तो धरती पर कभी कभी आता है.... हो जाने दो महफिल।"

मेकडेलिन ने कीमती इत्र से जिसस के पैर धोये और अपने लम्बे-लम्बे रेशम जैसे बालों से जिसस के पैर पौंछे। उस मेकडेलिन की तो जिसस में अनन्य श्रद्धा थी लेकिन यहूदी यह सब देखकर जल रहे थे, व्यवस्था वाला देखकर परेशान हो रहा था। वह अपने को कहलाता तो जिसस का शिष्य था, लेकिन जिसस में उसका अनन्य भाव नहीं था और बाहर से गणिका (वेश्या) दिखाई देने वाली वह मेकडेलिन.... उसका जिसस के प्रति अनन्य भाव था।

जिसस जब क्रास पर चढ़े तो विरोधी तो विरोधी थे ही लेकिन जो यश के समय जिसस के नजदीक आ जाते थे, जिसस के यश में जो भागीदार हुए थे वे लोग भी ताली बजाने वालों के साथ हो गये थे। परंतु ईमानदार मेकडेलिन अंतिम समय तक जिसस के प्रति अनन्य भाव रखकर उनकी सेवा उपस्थित रही थी।

किसी संत का, महापुरूष का यश होता है, उस समय तो चारों ओर लोग एकत्रित हो जाते हैं, यह कोई बड़ी बात नहीं है। वे यश के भगत हैं, महापुरूष के नहीं। गवर्नर स्पोंटियस पायलट ने भी जिसस को बचाना चाहा था लेकिन जनमत इतना विरूद्ध था कि उसकी कुर्सी खतरे में पड़ जाती। कुर्सी में उसकी अनन्यता थी, जिसस में नहीं जबकि मेकडेलिन की जिसस में अनन्यता थी।

वाहवाही के लिए जो आगे जाते हैं, वे यशभगत कहलाते हैं, लेकिन जिनकी ईश्वर तथा ईश्वरप्राप्त महापुरूषों में अनन्य श्रद्धा होती है वे अनन्य योग को प्राप्त कर लेते हैं, अनन्य ईश्वर तत्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।

जीवन में कुछ न कुछ मात्रा में दृढ़ता अवश्य ही होनी चाहिए। कम से कम इतना नियम तो करना ही चाहिए कि गुरूमंत्र का प्रतिदिन इतना जाप करना है अथवा सत्साहित्य का इतना स्वाध्याय, जप, पाठ आदि करना है। जीवन में कोई नियम नहीं होगा तो मन धोखा दे देगा। कुछ न कुछ सत्कर्म का नियम अवश्य होना चाहिए, फिर चाहे वह छोटा हो या बड़ा हो लेकिन नियम के माध्यम से तुमने थोड़ी-सी भी लगाम लगा दी तो फिर यह मन तुम्हें धोखा नहीं देगा। जब मन में आया तब चल दिये, मन में आया तब खाया-पिया, मन हुआ तो माला कर ली और मन हुआ तो छोड़ दी..... ऐसा करने से तुम भटक जाओगे।

कदाचित् तुम्हें अच्छा नहीं लगता हो लेकिन यह है तो तुम्हारे हित का ही...... भैया ! कड़वी दवा अच्छी नहीं लगती है।

मैंने एक बार कल्पित कहानी सुनाई थी कि जलेबी और करेले के बीच कुछ वार्तालाप हो रहा था। जलेबी कहती हैः

"अरे मुँए करेले ! तुम कितने कड़वे-कड़वे हो ? पकने के बाद भी तुम्हारी कटुता नहीं जाती और मैं कितनी मीठी ! हाथ को भी मिठास, कड़ाही को भी मिठास, जहाँ रखो, वहाँ मिठास, मुँह को भी मिठास, मैं कितनी मीठी हूँ !"

करेले ने कहाः "रहने दे, व्यर्थ की गपोड़ी कहीं की ! मालूम है कि बहुत मीठी-मीठी है लेकिन तेरा संग करने वाले की दुर्दशा होती है। तुझे कोई अधिक खाता है तो उसे डायबिटीज (मधुप्रमेह) के इंजेक्शन लेने पड़ते हैं तब वहाँ मैं काम आता हूँ।"

जलेबी अर्थात् वाहवाही या झूठी प्रशंसा। यह लगती तो अच्छी है लेकिन भीतर से जीवन खोखला कर देती है किन्तु सत्संग में कभी-कभी करेले जैसी थोड़ी बहुत कड़वी बात भी आती है, उसके सेवन से जीवन आनन्दमय बन जाता है। नियमों के पालन में अपने मन को कड़वाहट लगती है, अनुशासन में अपने मन को कड़वाहट लगती है, तभी जलेबी हजम हो सकती है अन्यथा जलेबी श्मशान में भेजती है।

मान पुड़ी है जहर की खाय सो मर जाय।
चाह उसी की राखता वह भी अति दुःख पाय।।

मान-सम्मान मिले, आदर मिले तो बहुत अच्छा लगता है और मान में थोड़ी सी ब्रेक लगे तो चित्त विचलित हो जाता है। नहीं....। अपने चित्त पर स्वयं को ही थोड़ी लगाम लगाना है। बस, थोड़ा-सा सावधान होने की आवश्यकता है।

आखिर कब तक इस चित्त के नचाने से हम लोग नाचते रहेंगे ?

पतंगा दीपक की तरफ आकर्षित होता है। उस बेवकूफ को पता नहीं कि कितने ही पतंगे मर मिटे हैं और खुद जा रहा है क्योंकि उसका अपने आप पर नियंत्रण नहीं है, विवेक नहीं है।

ऐसे ही हम भी अपने मन पर विवेक या नियंत्रण नहीं रखेंगे तो इसी संसार-भट्ठी में पच-पचकर हमारी जिन्दगी खत्म हो जाएगी। इसीलिए श्रीकृष्ण कहते हैं-

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

भगवान का नित्य स्मरण करो। नित्य स्मरण का अर्थ है कि जो कुछ काम करो श्रद्धा से, प्रीति से, भगवान की प्रसन्नता के लिए करो। खाओ तो ईश्वर की प्रसन्नता के लिए। 'ॐ प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा..... लो मेरे ठाकुर जी ! तुमको जिमा रहा हूँ.....।'

सोओ तो 'मेरे ठाकुर जी की सेवा के लिए मेरा तनमन काम आ रहा है इसलिए मैं आराम कर रहा हूँ.....।'

अरे, कपड़े पहनो तो प्रभु के लिये, हँसो तो प्रभु के लिए, रोओ तो प्रभु के लिये, कमाओ तो प्रभु के लिए और खर्च करो तो भी प्रभु के लिए। ऐसा करने से तुम्हारा हर कार्य भक्ति में गिना जाएगा। तुम्हारी भक्ति अनन्य योग होगी तो अनन्य ब्रह्माण्डनायक परमात्मा तुम्हारे हृदय में प्रगट हो जाएँगे।

जिसमें अनन्य भक्ति करने की कला का प्रागट्य हो चुका है, उसके लिए ईश्वर सुलभ है। गीता के इस एक ही श्लोक में भगवान ने यह कहा है किः "मैं सुलभ हूँ।"

योग शब्द गीता में 64 बार आया है और जो बहिर्मुख मनुष्य, मनमुख अथवा निगुरे मनुष्य हैं उन्हें तो 108 बार फटकारा है लेकिन सुलभ शब्द तो केवल गीता के आठवें अध्याय के चौदहवें श्लोक में ही.... एक ही बार आया है।

तस्याहं सुलभः पार्थः....

जो नित्युक्त है ऐसे योगी का चित्त भगवदाकार हो जाता है, चाहे वह डंडे खाकर नित्ययुक्त बने, अथवा सत्यता से मंत्र जाप करे या फिर रोजी रोटी की खटपट में उसका स्मरण कर ले अथवा दूसरे जो भी कार्य करे, वह सब परमात्मा के निमित्त करे, तो उसका चित्त भगवदाकार, ब्रह्माकार हो जाता है।

हम सबसे बड़ी भूल यही करते है कि एक दो घंटे नियम कर लिया और बाकी के घँटे... दे धमाधम..... एकदम नियम के विपरीत। नहीं....। काम करो तो भी सावधानी बरतते हुए कि हम ईश्वर से दूर जा रहे हैं कि नजदीक आ रहे हैं ? ऐसी कला अगर आ जाए तो आपके कार्य में पूर्ण रूप से सुवास आ जाएगी, आपके कार्य मंगलमय बन जाएँगे, आपके हाथों से बनी रसोई खाने वाले के भाग्य चमक उठेंगे और आपके हाथ का बना कपड़ा जो पहनेगा, उसका भी बेड़ा पार होने लगेगा।

कबीर जी कहा करते थेः "राम जी ने बुना है, राम जी के लिए बुना है।" कबीर जी जब बाजार में कपड़ा ले जाते तो लोग उनसे दाम पूछने की हिम्मत नहीं करते। इतनी सुन्दर बनावट है तो जरूर मँहगा होगा।

आप अपने सहित अपने इष्ट को और इष्ट के इर्दगिर्द जो देवी देवता है, उनको सबको इष्ट का रूप मानो तथा आप सहित इष्ट से एकत्व मानो। यह अनन्य योग हो गया।

अन्य अन्य तो दिखता है। जैसे बिजली के लट्टू अन्य अन्य दिखते हैं, पँखे अन्य अन्य दिखते हैं, स्पीकर, फ्रीज, कूलर, हीटर और अन्य साधन भी अन्य अन्य दिखते हैं लेकिन सबमें विद्युत प्रवाह अनन्य है। ऐसे ही अन्य अन्य में मेरा वह परमात्मा अनन्य है।

सब घट मेरा साईयाँ, खाली घट ना कोई।
बलिहारी वा घट की, जा घट प्रकट होई।।
कबीर कुआँ एक है पनिहारी अनेक।
न्यारे न्यारे बर्तनों में पानी एक का एक।।

ॐ एकत्व..... ॐ शांतिः ॐ आनन्द.... ॐ अभेद..... ॐ अनन्यता....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सेवाभावना की सुहास

सन् 1820 में कलकत्ता के पास एक गाँव में ईश्वरचंद्र विद्यासागर का जन्म हुआ था। विद्या में इतने कुशल, बुद्धिमान थे कि उसका नाम विद्यासागर पड़ा।

वे जब बालक थे तब एक बार अपने पिता के साथ टाँगे में बैठकर कलकत्ता जा रहे थे। उनका गाँव कलकत्ता से 19 मील दूरी पर था। रास्ते में माइलस्टोन देखकर उन्होंने पिता से पूछाः

"पिता जी ! यह पत्थर पर क्या लिखा है ?"

पिता ने कहाः "यह अंग्रेजी में उन्नीस लिखा है।"

बालक ईश्वर ने पूछाः "अंग्रेजी में ऐसे उन्नीस लिखते हैं ?"

"हाँ।"

बस, फिर तो पक्का कर लिया। उन्नीस के बाद अठारह दिखे। आगे बढ़ते-बढ़ते सत्रह, सोलह..... चार, तीन, दो, एक..... आदि दिखते गये। बुद्धिमान बालक ईश्वर ने टाँगे की सफर करते करते ही उन्हें पक्का कर लिया। कलकत्ता पहुँचा तब तक वह अंग्रेजी की पूरी गिनती सीखकर पक्की कर चुका था। ऐसा बुद्धिमान लड़का था वह।

जैसे जैसे वह बड़ा होता गया, सत्संग का लाभ मिला होगा या अगले जन्म की साधना होगी, उसे पता लगता गया कि इस संसार की सब चीजें छोड़कर मर जाना है। इनका सदुपयोग करके अपनी आत्मा के समीप आना चाहिए। या तो सेवा के द्वारा इनका सदुपयोग करके अपने परमात्मा में आना है या फिर इनके लिए मजदूरी करके पच-पचकर मर जाना है। फिर घोड़ा, गधा, बिल्ली और सूअर आदि बनकर जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ना है।

अभी हम मध्य में हैं, चेतन की अवस्था में हैं। इसका अति उपभोग करके अचेतन अवस्था में जायें अथवा सदुपयोग करके परम चेतन अवस्था में जायें अथवा सदुपयोग करके परम चेतन अवस्था में जायें यह हमारे हाथ की बात है।

ईश्वरचन्द्र बहुत बुद्धिमान और तेजस्वी थे इसलिए पढ़ाई पूरी कर लेने पर उन्हें विद्यासागर के नाम से अलंकृत किया गया। युनिवर्सिटी में उनकी नियुक्ति हुई। वे छात्रों को तर्कशास्त्र पढ़ाते थे। परंतु वे इतने अक्लमंद, समझदार और साथ ही साथ निःस्पृह थे कि कुछ ही दिनों में उन्होंने युनिवर्सिटी के सत्ताधीशों से कहाः

"मुझसे ज्यादा अच्छे ढंग से तर्कशास्त्र तो पंडित श्रीमान वाचस्पति पढ़ा सकते हैं। मैं अपनी आय के स्वार्थ के कारण छात्रों की पढ़ाई में कमी क्यों आने दूँ? मुझमें तर्कशास्त्र पढ़ाने की योग्यता है मगर मुझसे ज्यादा अच्छा पंडित वाचस्पति उन्हें पढ़ा सकते हैं।"

सत्ताधीशों ने इनकी बात स्वीकार कर ली और ईश्वरचंद्र विद्यासागर खुद पंडित वाचस्पति के पास निमंत्रण लेकर गये। वाचस्पति इनके निमंत्रण को सुनकर चकित हो गये। वे बोलेः

"इस पद के लिए तो पंडित लोग खींचातानी करते हैं। आपको यह सामने से मिला है और आप मेरे लिये सुझाव दे रहे हैं? वास्तव में विद्यासागर! आप मानव नहीं अपितु देव हैं।"

मानव अगर भोगों का उपयोग करता है तो मानव होता है। उसमें आसक्ति करता है तो दानव होता है और उसका त्याग करता है तो देव होता है।

वाचस्पति ने पूछाः

"आपने यह पदवी कैसे त्याग दी?"

"इसमें क्या बड़ी बात है ? जिसमें बहुजन का हित होता है, उसी में मेरा हित है। क्योंकि हम व्यापक समाज से जुड़े हैं।" विद्यासागर ने उत्तर दिया।

आप समाज से अलग नहीं रह सकते। समाज के हित में आपका हित है। कुटुंब के हित में आपका हित है। पड़ोस के हित में आपका हित है। देश के हित में आपका हित है। विश्व के हित में आपका हित है। विश्व के विनाश में आपका भी अहित है, विनाश है। आप विश्व से जुड़े हैं। अगर आप शुभ वातावरण में बैठे हैं, चिंतन, भजन, ध्यान करते हैं तो आपके शुभ भाव, शुभ श्वासोच्छवास इर्दगिर्द जाकर अच्छा वातावरण बनाते हैं। ऐसे ही हम अशुभ चिंतन करें तो वह भी वायुमंडल में फैलेगा। सब उसके श्वास लेंगे। कोई आदमी अकेला नहीं है। वह पूरे विश्व से जुड़ा है। सूर्य वहाँ ठंड़ा हो जाय तो हम यह कहने को नहीं रहेंगे कि सूर्य ठंडा हो गया।

भले अभी यहाँ 2x2 की जगह पर बैठे हैं परंतु यह टुकड़ा पूरे गाँव से, गाँव शहर से, शहर राज्य से, राज्य देश से और देश विश्व से जुड़ा है....... और विश्व विश्वेश्वर से अलग नहीं है। सचमुच, आपका भौतिक शरीर भी विश्वेश्वर के साथ जुड़ा है, मगर इसका पता नहीं। जड़ प्रक्रिया से देखो तो आपका जड़ शरीर भी विश्वेश्वर के साथ जुड़ा है। आपकी आँख मन से, मन बुद्धि से, बुद्धि चित्त से और चित्त चैतन्य से जुड़ा है। ऐसे चेतना से देखें तो भी आप परमात्मा से जुड़े हैं। दोनों तरफ से इतने जुड़े हैं फिर भी आप अपने आपको ईश्वर से, सुख से दूर क्यों पा रहे हैं ? क्योंकि राग, भय और क्रोध जारी है। यह क्यों होता है ? क्योंकि मिटने वालों में अमर जैसा मोह है और अमिट का ज्ञान नहीं है।

एक ही बीमारी है और एक ही दवा है। बीमारी यह है कि परिस्थिति और परिवर्तनों में आस्था एवं आसक्ति। दवा यह है कि परिवर्तन को परिवर्तन समझो और शाश्वत से प्रीति कर लो.... **'मन्मया'** हो जाओ।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर के पास एक लड़का आया और कहने लगाः

"बाबुजी ! अकाल का समय है। भीख माँगना मेरा स्वभाव नहीं फिर भी माँग रहा हूँ। हो सके तो एक पैसा दे दो।"

विद्यासागर तो सत्पुरूष थे। वे बोलेः "बेटा! एक पैसा चाहिए? अगर मैं तुझे दो पैसा दूँ तो तू क्या करेगा ?"

गरीब सच्चे लड़के ने कहाः "एक पैसे के उबले चने लेकर खाऊँगा और एक पैसा माँ को दूँगा।"

विद्यासागर ने पूछाः "अगर चार पैसे तुझे दूँ तो ?"

लड़काः "दो पैसे के चने घर ले जाऊँगा और दो पैसे माँ को दूँगा।"

विद्यासागर ने फिर पूछाः "अगर मैं तुझे दो आने दे दूँ तो ?"

लड़के ने सिर नीचे कर दिया और चलता बना।

विद्यासागर ने कलाई से पकड़ा और बोलेः

"क्यों जाता है ?"

"आप एक पैसा तो देते नहीं, दो आने इस जमाने में कौन दे सकता है ? आप मेरी मजाक उड़ाते हैं।"

विद्यासागरः "नहीं, समझ ले मैं तुझे दो आने दूँ तो तू क्या करेगा ?"

लड़काः "एक पैसे के चने अभी खाऊँगा, तीन पैसे के चने घर ले जाऊँगा और एक आना पूरा माँ को दूँगा।"

विद्यासागर फिर उस सच्चे लड़के को आजमाते हैः

"अगर तुझे चार आने दूँगा तो क्या करेगा ?"

उस हिम्मतवान लड़के ने कहाः "दो आने को जैसे आगे कहा वैसे ही उपयोग में लाऊँगा और बाकी के दो आने के आम आदि फल खरीद कर बेचूँगा और उससे अपना गुजारा चलाऊँगा।"

विद्यासागर ने उसकी सच्चाई, समझदारी और स्वाश्रय को मन ही मन सराहते हुए उसे एक रूपया हाथों में थमा दिया। लड़का तो हैरान हो गया कि वास्तव में यह आदमी अदभुत है ! क्या कोई फरिश्ता है जो स्वर्ग से मेरा भाग्य खोलने के लिए नीचे उतरा है ! लड़का रूपया लेकर उनका अभिवादन करता हुआ चलता गया।

दो साल के बाद विद्यासागर कलकत्ते की बाजार से गुजर रहे थे तब एक युवक ने उन्हें रोका। हाथ जोड़कर, आजीनिजारी करते हुए कहने लगाः "कृपा करके मेरी दुकान पर पधारिये।"

"भाई ! मैं तो तुझे पहचानता भी नहीं और जिस दुकान की ओर तू इशारा कर रहा है, वह इतनी बड़ी दुकान किसकी है ?"

"आप चलो तो सही ! आपकी ही है।" लड़के की आवाज में नम्रता और कृतज्ञता थी।

विद्यासागर दुकान पर गये।

"आप बैठो, यह आपकी ही दुकान है।"

युवक की आँखें कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए छलछला रही थी।

विद्यासागरः "भाई ! मैं तो तुझे जानता ही नहीं।"

"मैं वह लड़का हूँ, जिसको आपने एक पैसा, दो पैसा, एक आना, दो आना, चार आना कहते हुए एक रूपया दिया था। यह आपके एक रूपये का रूपांतर है, आपकी कृपा का प्रसाद है।"

लड़का अब विद्यासागर के चरणों में गिर पड़ा।

विद्यासागर के चित्त में उस समय तो अनहद आनंद आया, शांति मिली और और अब उनकी प्रसिद्धि यहाँ सत्संग में आप लोगों तक पहुँची। अगर वे उस रूपये को अपने मोह और स्वार्थ में उड़ा देते तो क्या मिलता ?

तप करे पाताल में, प्रकट होय आकाश।

रूपयों में, वस्तुओं मे एवं भोग में जहाँ भी आपका स्वत्व है, आपकी मालिकी है वह अगर आप परहित के लिए खर्च कर देते हैं तो आपकी कीर्ति स्थायी हो जाती है। धोखा-धड़ी फरेब से किसी की कीर्ति होती दिखती हो तो वह अस्थायी है। कोई अगर अपने सही पसीने की कमाई से भोग न भोगकर सदुपयोग में खर्चता है तो उसका यश स्थायी हो जाएगा।

विद्यासागर सीधे-सादे कपड़े पहनते थे। अपने शरीर के लिये ज्यादा खर्च नहीं करते थे। कुलपति के पद तक पहुँचे थे मगर इसके कारण खान-पान, पहेरवेश में आडंबर, दिखावा नहीं आया था। वे सादा और पवित्र जीवन जीते थे।

एक बार वे रास्ते से गुजर रहे थे। सामने से एक ब्राह्मण आँसू बहाता हुआ मिला। परदुःखकातरता तो उनके स्वभाव में कूट-कूटकर भरी थी। रास्ते में गुजरते हुए भी खोजा करते थे, कोई सेवा का मौका मिल जाय। कोई रोड़ा, पत्थर बीच रास्ते में पड़ा हो तो हो उसे किनारे लगा देते थे। कोई रोता, बिलखता हुआ दिखता तो उससे सहानुभूति से बात करते।

किसी का मार्गदर्शन करते समय उसे जो आनंद मिलता है, दुःखनिवृत्ति होती है उससे ज्यादा आनन्द मार्गदर्शक को और सहानुभूति करने वाले को अपने ही दिल में मिलता है। सामने वाला तो आपके बताये हुए रास्ते पर चले तब उसे फायदा होता है मगर आपने सहानुभूति से रास्ता बताया तो आपके हृदय में उसी समय फायदा महसूस होने लगता है। भय, राग और क्रोध कम होने लगते हैं।

ईश्वर को पाने के ले कोई मजदूरी नहीं करनी पड़ती, सिर्फ कला समझनी पड़ती है। मुक्ति के लिए कोई ज्यादा मेहनत नहीं है। नश्वर का सदुपयोग और शाश्वत में प्रीति ये दो ही छोटे-से काम हैं।

मिनिस्टर होना, प्राईम मिनिस्टर होना आप सबके बस की बात नहीं और फिर ये बड़े-बड़े काम का नतीजा एकदम बड़ा है।

विद्यासागर ने उस ब्राह्मण को थाम लियाः "क्या बात है ? तुम्हारी आँखों से आँसू गिरते हैं ? बताओ।"

दुःखी ब्राह्मणः "अरे मजदूर ! तू क्या मेरा दुःख दूर करेगा ?"

विद्यासागर बिनती करने लगेः "फिर भी भैया ! बताओ न ! मेरी जिज्ञासा है।"

"मैंने लड़की की शादी में देखा-देखी ज्यादा खर्च कर दिया क्योंकि जाति में ऐसा रिवाज है। खर्च के लिए कर्जा लिया। जिससे कर्जा लिया उस महाजन ने मेरे पर दावा कर दिया। हमारी सात पीढ़ियों में, पूरे खानदान में हम कभी कोर्ट कचहरी नहीं गये। अब मैं ऐसा बेटा पैदा हुआ कि मेरे बाप, दादा, नाना आदि का नाक कट जाएगा। मैं कोर्ट में जाकर खड़ा रहूँगा वह कैसा लगेगा ? कितनी शर्मनाक घटना होगी वह ? ऐसा कहकर सिसक-सिसक कर रोने लगा।

"अच्छा, महाजन का क्या नाम है ?" विद्यासागर ने पूछा।

"आप नाम जानकर क्या करोगे ? मेरा दुःख, मेरा भाग्य, मैं फोड़ूँगा, आप अपने काम में लगो।"

ब्राह्मण मुलाकात निपटाना चाह रहा था।

"कृपा करके बताओ तो सही।"

विद्यासागर ऐसा नहीं कह रहे हैं कि, "मैं कर्जा चुकाऊँगा, मैं ठीक कर दूँगा, मैं विद्यासागर हूँ।"

विद्यासागर ने आजीजी करके महाजन का नाम और कोर्ट के मुकद्दमें की तारीख पूछ ली। जिस दिन ब्राह्मण कोर्ट जाने को था उससे पहले ही उसे घर बैठे ही पता लग गया कि उसका केस खारिज हो गया है। क्यों? क्योंकि महाजन को रूपये मिल गये। किसने दिये? कोई पता नहीं। आखिर उसने पता लगाया कि परदुःखकातरता, परदुःखभंजन विद्यासागर मुझे सड़क पर मिले थे। उन्होंने पैसे भर दिये और मुझे दुःख से मुक्त किया।

उस ब्राह्मण को चित्त में अगाध शांति और सुख मिला मगर उस वक्त मिला जब उसे कर्जमुक्ति का पता चला। जबकि विद्यासागर को उससे कई गुनी शांति और आनंद उसी वक्त मिला जब उन्होंने उस ब्राह्मण का हित किया।

एक दिन विद्यासागर किसी स्टेशन पर उतरे। उन्हें शहर में जाना था। इतने में वहाँ का एक डाक्टर 'ऐ मजदूर..... ऐ मजदूर......करते हुए मजदूर के लिये चिल्ला रहा था। अब छोटे से स्टेशन पर मजदूर कहाँ? विद्यासागर धीरे-से, गंभीर चाल से आ रहे थे। उनके कपड़े सीधे सादे थे। डाक्टर ने उन्हें बड़े जोरों से डाँटाः " क्या तुम मजदूर लोग बड़े आलसी हो गये हो? इधर आओ, उठाओ..... यह बैग उठाओ।"

विद्यासागर सिर पर बैग उठाकर पैदल चलकर उसके घर पहुँचे।

वह अकड़ू डाक्टर घर में जाकर पैसे ले आया और इन्हें देने लगाः

"कितनी मजदूरी हुई ?" डाक्टर ने पूछा।

इतने में डाक्टर के बड़े भाई ने खिड़की से देखा कि विद्यासागर आज हमारे प्रांगण में खड़े हैं! वह तो झटपट बाहर आकर आदरपूर्वक पैर छूने लगा।

तब डाक्टर को पता चला कि जिनका नाम सुना था..... विद्यासागर जी, वे ही हैं ये। अरे!

इतने में करूणापूर्ण हृदय से विद्यासागर बोलेः "मैं मजदूरी यही चाहता हूँ कि मेरे भारतवासी अहंकाररहित हों, स्वावलंबी हों। अपना काम आप ही करें और कर्तृत्व का अभिमान न रखें। यह मजदूरी मुझे दे दो।"

डाक्टर तो फूट-फूटकर रोने लगाः "मैंने आप जैसे को नहीं पहचाना और अपमान किया।"

विद्यासागर ने कहाः "तुमने अपने आपको ही नहीं पहचाना तो औरों की बात क्या ? अपने आपको ही पहचान लो, हम भी उसी की शरण हैं।"

पुरूष में, स्त्री में और पदार्थों में जो आकर्षण है वही हमें भय, शोक और जिम्मेदारी में डाल देता है। जिससे स्त्री, पुरूष और पदार्थ शोभायमान हो रहे हैं, उसके आकर्षण का पता नहीं इसलिए इन बाहरी आकर्षणों में हम हस्ताक्षर कर देते हैं। बाहरी आकर्षणों में हम हस्ताक्षर कर देते हैं। बाहरी आकर्षणों में जब हस्ताक्षर कर देते हैं तो **'मन्मया'** नहीं हो पाते। **'मन्मया'** नहीं हो पाते इसी से सारे दुःख और पापों की शुरूआत हो जाती है।

साधक ऐसा चाहिए, जा के ज्ञान विवेक।
बाहर मिलता सौं मिले अंदर सब सौं एक।।

साधक बाहर मिलने जुलने में सब से ठीक तरह से मिले, मगर अंदर से समझे कि यह सब सपना है। यह सब आने जाने वाली परिस्थितियाँ हैं। मेरा मिलनेवाला तो मेरा कृष्णतत्त्व, मेरा रामतत्त्व, मेरा गुरूतत्त्व, मेरा आत्मदेव है। ऐसा अगर सजगता से भान रहे भय, राग, क्रोध क्षीण होते जायेंगे।

जितनी जितनी नश्वर वस्तुओं की आस्था मिटती जाएगी उतने उतने भय, राग, क्रोध दूर होते जाएँगे.... उतना ही व्यक्ति **'मन्मया'** होता जायेगा।

विद्यासागर की सेवा करना अच्छा है, परंतु इसमें भी बाहर की वस्तुओं की कुछ न कुछ पराधीनता रहती है। धन की, सेवा लेने वाले की और सेवा करने का निर्णय करने वाली बुद्धि की पराधीनता तो बनी ही रहती है। पूर्ण सुख यहाँ भी नहीं मिलता। पूर्ण सुख तब मिलता है जब तत्त्व का बोध मिलता है। पूर्ण स्वतंत्रता तब मिलती है जब पूर्ण आत्मा का 'मैं' रूप में साक्षात्कार हो जाता है।

गीताकार ने कहा हैः

आरूरूक्षो मुनेर्योगं कर्मकारणमुच्यते।

योग में आरूढ़ होना चाहो, संसार में सफल होना चाहो तो निष्काम कर्म करो। निष्काम कर्म करने से हृदय शुद्ध होगा। हृदय शुद्ध होने लगे तो फिर समय बचाकर ध्यानमग्न हो जाओ। ध्यान करते करते उसमें आगे बढ़ो फिर विवेक विचार को ले आओ और आत्म-साक्षात्कार करके मुक्त हो जाओ।

सब मुसीबत, कलह, कलेश का कारण क्या ? बाहर के जगत के व्यवहार को अपनी वासना की डोर से बाँध रखने का जो आग्रह है उसी से सब दुःख, मुसीबतें उत्पन्न होती है।

दुःख उत्पन्न न हो उसका ख्याल रखो। तुम्हारा मन सुख चाहता है। और सब कुछ करके तुम सुख ही पाना चाहते हो। परिस्थितियों को अनुकूल बनाने का आग्रह है वह गहराई में सुख की इच्छा का रूपांतर है।

अब क्या करना चाहिए ?

परिस्थिति को अनुकूल बनाने का आग्रह न रखें। फिर भी सुख की तो इच्छा है ही। जब तक सुख नहीं मिला तब तक इच्छा मिटती नहीं।

तो फिर क्या करें ?

'मन्मया' हो जाओ। सुख लेना हो तो अंदर में लो और नश्वर चीजों का उपयोग करना हो तो बाहर आ जाओ, तुम्हारे दोनों हाथों लड्डू।

बाहर के व्यवहार से कोई सुखी होना चाहे तो समझो कि तिनके के ढेर को जलाकर, उसमें कूदकर भाई साहब शीतलता पाने चाहते हैं। या फिर अग्नि जली हो उसे पेट्रोल का फव्वारा मारकर बुझाना चाहते हैं।

अतः बुद्धिमान वह है जो संसार की वस्तुओं का उपयोग भोगबुद्धि से नहीं अपितु निर्वाहबुद्धि से करे। संसार की वस्तुओं का कुछ हिस्सा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय खर्च करें और कुछ समय आन्तरयात्रा के लिए भी अवश्य निकाले।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आखिरी चक्कर

अब प्रभु कृपा करहूँ एही भाँति।
सब तजि भजन करहूँ दिन राति।।

सब छोड़ना अर्थात् सब जिसमें रहता है उस 'मैं' का त्याग करना।

अहंकार पिघला हो या कोई पुण्य प्रकट हुआ हो और किसी के दो शब्द लग जायें तो बेड़ा पार हो जाये। विद्योत्तमा के शब्द लग जाने से महामूर्ख में से महाकवि कालिदास का प्रागट्य हुआ। ऐसी ही एक दूसरी घटना हैः

लालाबाबू नाम के कलकत्ता के एक सेठ 300 पेढ़ी के मालिक थे। हस्ताक्षर करते-करते ऊँगलियाँ दुःख जाती थीं तो मालिश करानी पड़ती थी। मुनिमों को पत्र लिखाते-लिखाते उनका दिमाग थक जाता था, इतनी प्रवृत्ति थी। पुराने जमाने की यह बात है। कभी कभी शाम को चार

घोड़ेवाली गाड़ी में बैठकर लाला सेठ गंगासागर की ओर हवा खाने जाते। बीच में खाड़ी आती थी और दूसरी ओर बगीचा। नाव में बैठकर खाड़ी पार करते।

एक दिन सेठ शाम को बगीचे में जाकर बैठे। थके हुए थे अतः जरा झपकी लग गयी। बहुत समय बीत गया। नाव वाले ने देखा कि अँधेरा होने लगा है। सभी सैलानी आ चुके हैं पर वे सफेद-सफेद कपड़े वाले सेठ अभी तक नहीं आये। नाव का यह आखिरी चक्कर है। सेठ रोज के ग्राहक थे इसलिए उसने जोर से आवाज लगायीः

"ऐ मुसाफिर ! सूरज डूब गया है। ऐ मुसाफिर ! यह आखिरी चक्कर है। अँधेरा हो रहा है। वक्त हो गया है। समय बीता जा रहा है। चलो, नहीं तो पछताओगे।"

वे सेठ तो थके हुए थे। जरा सो गये थे। इस प्रकार दो-चार बार नाव वाले ने आवाज लगायी। अचेतन मन में आवाज पहुँची इसलिए मन सचेतन हुआ। नींद में भी सुनने की क्षमता अचेतन मन में है। अचेतन मन में ये वाक्य असर कर गये। सेठ एकाएक जागे और आकर नाव में बैठे। नाव से नदी तो पार कर गये पर इस प्रकार पार हुए कि सदा के लिए जन्म मरण से पार हो गये।

नाव में से रास्ते पर आये और जहाँ घोड़ागाड़ी खड़ी रखी थी वहाँ न जाकर दूसरी ओर से हावड़ा स्टेशन जाकर रेलगाड़ी में बैठे और वृन्दावन पहुँचे। किसी महापुरूष की खोज की। उन्होंने सोचा कि इस जीवन का आखिरी चक्कर खाली जाये उसके पहले, जीवन का सूरज डूबे उसके पहले परमात्मा के साथ अपने आपको मिला लूँ।

वृन्दावन में कई साधुओं के सान्निध्य में आये पर कहीं भी उनका हृदय लगा नहीं। एक सप्ताह के बाद जिनके हृदय में ही भगवान हैं ऐसे मस्तराम, आत्मस्वरूप में जगे हुए ब्रह्मवेत्ता संत महापुरूष की खबर उनको मिली। लालाबाबू उनकी शरण में गये।

मस्तराम संत ने उनकी सारी बात सुनने के बाद लाला बाबू से कहाः

तुम घर पर रहकर ही भजन करो।

लालाबाबू ने कहाः "घर पर तो बाबाजी ! रजोगुणी वातावरण है और 300 पेढ़ियाँ हैं इसलिए आज यह तो कल वह। ऐसा करते-करते तो बूढ़ा होने लगा और सिर के बाल सफेद होने लगे। बाबाजी ! चाहे जो करो, मेरे पर कृपा करके मुझे उबार लो। मुझे फिर से माया में मत धकेलो।

उनकी तीव्रता देखकर बाबाजी ने कहाः

"दो शर्तें हैं। सुबह शाम ध्यान-भजन करो यह तो ठीक है किन्तु बाकी के समय में किसी के भी साथ गप्पें मत हाँकना। तुम्हारे इस बीते हुए स्वप्न की बातें न कहना। सारी स्मृतियों को छोड़ दो। सारा संसार स्वप्न जैसा ही है। जो भगवान के मार्ग पर चलते हैं उन्हें सहायता मिले ऐसा कार्य करो, सेवा करो, स्मरण करो, आत्मस्मरण करो, आत्मचिंतन करो।"

सारी विधि बाबाजी ने बता दी। लालाबाबू रोज यमुना में स्नान करते, भिक्षा माँगते। इससे अहँकार पिघलने लगा।

इधर कलकत्ता में तो धमाचौकड़ी मच गयी। तार, टेलिफोन खनकने लगे। गाड़ियों की भागदौड़ हो गयी। 300 पेढ़ी के मालिक लालाबाबू लापता हो गये, उन्हें ढूँढने के लिए ईनामों की घोषणा हुई। पर कहीं भी पता न लगा।

लालाबाबू की धर्मपत्नी कभी आँसू बहाती और कभी कल्पना में खो जाती। लड़के सोचते कि लालाबाबू कहाँ गये? कहाँ होंग? ऐसा करते-करते पेढ़ियों द्वारा बात फैली। कोई मुनीम वहाँ वृन्दावन में रहता था। उसने देखा कि ये जो साधुवेश में हैं वे ही हमारे भूतपूर्व लालाबाबू हैं। उसने तो तार करके लालाबाबू की धर्मपत्नी और लड़कों को बुला लिया।

लालाबाबू की धर्मपत्नी लालाबाबू को देखकर आँसू बहाने लगी और समझाने लगी। लालाबाबू ने पूरी बात सुनकर कहाः "यह सब तो ठीक है, परन्तु किस समय वह काल आकर मुझे ले जाएगा इसकी तुम गारन्टी देती हो ?"

लड़के कहने लगेः "पिता जी ! तुम्हारे बिना हमें नहीं चलेगा।"

लालाबाबू कहते हैं- "ठीक है। मैं तुम्हारे साथ रहूँ पर जब काल मुझे लेने आयेगा तब मैं उसे ऐसा कहूँ तो क्या वह सुनेगा भी? मौत सोचेगी कि मेरे बिना तुमको चलेगा या नहीं चलेगा।"

लड़के रोने लगे। पत्नी का आग्रह था, पुत्रों का आग्रह था। अंत में उन्होंने कहाः "हम तुम्हारे गुरू जी से मिलते हैं।"

लालाबाबू ने कहाः "मिलो।"

गुरूजी से बात की। गुरूजी ने उन सबको देखकर लालाबाबू से कहाः "इन सबको दुःख होता है तो तुम जाओ।"

लालाबाबू ने कहाः "पर बाबाजी ! इस प्रकार इस दुनिया में अनेकों लालाबाबू रहते हैं। उन सबके दुःख दूर हुए हों तो मैं जाऊँ। पत्नी के रहने से पति के दुःख दूर हुए हों और पति से रहने से पत्नी के दुःख दूर हुए हों तो मैं जाऊँ। अब तो आप मुझे भवसागर में फिर न धकेलो यही मेरी प्रार्थना है।"

यह बात सुनकर बाबाजी को तो सरौते के बीच सुपारी जैसा हुआ। एक ओर व्यवहार तो दूसरी ओर परमार्थ।

बाबाजी ने कहाः "हम क्या करें ? तुम आपस में जानो।"

जिसका जोर होता है उसी का सोचा हुआ होता है। मोहमाया का जोर हो तो व्यक्ति संसार की ओर खिंच जाय और विवेक का जोर हो तो उसकी जिंदगी सुधर जाये, साथ ही साथ कुटुम्बियों की जिंदगी भी सुधर जाये। जिसका बल उसका फल।

पुनः एक बार लालाबाबू उनसे मिले और समझायाः

"तुम मुझे यहाँ से ले जाओ और मैं फिर से कागजात में हस्ताक्षर करता-करता मर जाऊँ और भवसागर में भटकूँ। इससे तो मैं यह वैभव तुमको देता हूँ। मैं कुछ नहीं ले जा रहा हूँ और सच्चा धन कमाने जाता हूँ। मैं जितनी तपस्या करूँगा उसका आधा फल तो तुम्हें घर बैठे मिलेगा।"

सुर नर मुनि जन की यह रीति।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति।।

पत्नी को इस प्रकार समझाया तो उसे लगा कि बात तो सच्ची है। वैसे भी यह वैभव और हाईकमाण्ड(उच्चाधिकार) हमारे पास है ही और ये यहाँ तप करेंगे तो वह पुण्य भी मेरे साथ ही है। आखिर वह बोलीः

"अच्छा अब आप तपस्या करो। किसी समय हम आयें तब मिलना अवश्य...... जय श्रीकृष्ण। हम जाते हैं।"

तब लालाबाबू ने कहाः "देवी ! तुम इतनी पवित्र हो, समझदार हो तो मेरी एक बात मानो। इन 300 पेढ़ियों का वैभव तुम खा नहीं सकोगी, लड़के नहीं खा सकेंगे। तो अपनी 21 पीढ़ियाँ तर जायें ऐसा वैभव का सदुपयोग क्यों न करें ? तुम्हारा भी उद्धार हो। यहाँ एक ठाकुर जी का मंदिर बनवाकर उसकी सीढ़ियों पर इस दास का नाम लिखवा दूँ जिससे भक्तों की चरण रज सिर पर लगने से करोड़ों जन्मों के पाप कटें और एक धर्मशाला बनवा दूँ जिससे यहाँ थके हुए लोग विश्राम लें और उसका पुण्य हमें मिले।"

धर्मपत्नी का हृदय पिघला और उनके वैभव का थोड़ा भाग सत्कृत्य में खर्च हुआ। वह मंदिर आज भी वृंदावन में खड़ा है। उसमें सोने का एक खम्भा है अतः "सोने के खम्भे वाला मंदिर... लालाबाबू का मंदिर....' ऐसा कहा जाता है। मंदिर तो भगवान का है परन्तु लालाबाबू ने बनवाया है इसलिए ऐसा कहा जाता है।

लग गई नाविक की बात। शरीर मरणधर्मी है, नश्वर है, ऐसी समझ आ जाये और किसी नाविक की बात लग जाये तो बेड़ा पार हो जाये।

यह तन विष की बेलरी, गुरू अमृत की खान।
सिर दीजे सत्गुरू मिले, तो भी सस्ता जान।।

यह शरीर विष की बेल है। पर इसमें यदि थोड़ी समझ आ जाये तो खबर मिल जाये कि अमर आत्मा भी उसी के साथ है। जीवनदाता भी उसी के साथ है, विश्वनियंता भी उसी के साथ ही है।

अनित्यानि शरीराणि बैभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः।।

शरीर अनित्य है, वैभव शाश्वत नहीं है। शरीर हर रोज मृत्यु के नजदीक जा रहा है। अतः धर्म का संग्रह कर लेना चाहिए।

हम जब जन्मे थे उस समय हमारी जो आयु थी वह आज नहीं है। हम जब यहाँ आये तब जो आयु थी वह अभी नहीं है और अभी जो है वह घर जाते तक उतनी ही नहीं रहेगी।

ऐसा अनित्य शरीर, नाशवान वैभव, नित्य मृत्यु की ओर जानेवाला शरीर.....

नाविक के दो शब्द कानों में पड़े तो लालाबाबू ने अपना कल्याण कर लिया। पहुँच गया पवित्र पुरूषों के चरणों में। मंदिर बनवाया, धर्मशाला बनवायी और हृदय मंदिर की यात्रा की। पुत्रों और पत्नी के मोहपाश में न पड़े। प्रभुप्रेम में पावन हुए। लालाबाबू ने तो अपना काम कर लिया। अब हम इस माया से निपटकर किस दिन कल्याण के मार्ग पर चलेंगे ?

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अन्वेषण और निर्माण

अब हम अन्वेषण और निर्माण पर कुछ विचार करेंगे।

एक होता है अन्वेषण और दूसरा होता है निर्माण। निर्माण उस वस्तु का होता है जो पहले नहीं थी। निर्मित वस्तु नश्वर होती है। यह कहना ठीक ही होगा कि निर्माण होने पर ही उसका नाश प्रारम्भ हो जाता है।

जैसे, शरीर का निर्माण हुआ लेकिन निर्माण के साथ हो धीरे-धीरे उसका आयुष्य क्षीण होने लगता है। ऐसे ही जिस किसी भी वस्तु का निर्माण होता है, जो बनती है उसका बिगड़ना, बिखरना शुरू हो जाता है।

परमात्मा निर्मित की जाने वाली वस्तु नहीं है। साधन भजन से कभी परमात्मा का निर्माण नहीं होता है। साधन भजन तो आसक्ति मिटाने के उपाय हैं, राग-द्वेष मिटाने के उपाय हैं। साधन भजन से निर्माण का आकर्षण मिटाकर शाश्वत का अन्वेषण करना होता है। जगत का धन, वैभव, ऐश-आराम, रिद्धि-सिद्धि, लौकिक-पारलौकिक ऐश्वर्य, इन सबमें विवेक करके अपने चित्त को बचाना पड़ता है, तब सत्य वस्तु का अन्वेषण होता है।

आप चाहते क्या हैं? सुख चाहते हैं।

कैसा सुख चाहते हैं? सदा रहने वाला सुख चाहते हैं या क्षणभर का? सदा रहने वाला सुख चाहते हैं।

तो घड़ी भर रहने वाले इन पदार्थों से प्राप्त सुख कब तक टिकेगा? संसार की प्रत्येक निर्मित वस्तु क्षणभंगुर ही है।

ब्रह्माजी की एक घड़ी में हमारे न जाने कितने कितने पदार्थ बनकर नष्ट हो जाते हैं।

आप सदा सुख चाहते हैं तो जो सदा रहता है उस तत्त्व का अन्वेषण करना चाहिए।

अच्छा, आप सदा सुख चाहते हैं लेकिन अल्प सुख चाहते हैं या पूर्ण?

थोड़ा सा सुख, अल्प सुख अल्पेन्द्रियों के द्वारा होता है जो कि कुछ समय के बाद नष्ट हो जाता है तथा इन्द्रियाँ भी कमजोर हो जाती हैं। अगर पूर्ण सुख चाहते हैं तो फिर पूर्ण का अनुसंधान करना पड़ेगा।

आप एक स्थान पर सुख और दूसरे स्थान पर दुःख चाहते हैं क्या ? सूरत में सुख मिले और अहमदाबाद में मुसीबत मिले ऐसा चाहते हैं क्या? नहीं....।

आप तो सदा, सर्वत्र और पूर्ण सुख चाहते हैं। जब आप सर्वत्र सुख चाहते हैं तो जो सर्वत्र है, उसकी शरण में आना ही पड़ेगा। जो सर्वत्र है उसी का अन्वेषण करना पड़ेगा। अच्छा, आप मेहनत, परिश्रम करके सुख चाहते हैं कि सहज में सुख चाहते हैं?

सहज में मिल जाय तो मेहनत क्यों करें? तो सहज में सुख चाहने वालों को सहज सुख स्वरूप हृदय गुफा में बैठा है उधर ही आना पड़ेगा।

जो सदा है, सर्वत्र है, सबमें है और सहज में है उसके लिए अन्वेषण करना, इसी का नाम साधना।

जो कभी है, कभी नहीं है, कुछ देर है फिर मिट ता है, उसके लिये प्रयत्न करना - यह संसार कहलाता है। संसार यानी जो सतत सरकता जाये।

भगवान श्री कृष्ण को भी संसार से वैराग्य हुआ था। श्रीकृष्ण ने सोचा कि राग तो बहुत करके देखा लेकिन राग की उत्पत्ति से अन्त में राग-द्वेष ही बढ़ेगा। श्रीकृष्ण की जो रानियाँ और पटरानियाँ थीं, जिनका निर्दोष आचरण था, ऐसी रानियाँ भी आपस में राग-द्वेष करने लगीं और अपने ही पुत्र परिवार वाले आपस में कलह करने लगे। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण की खिल्ली उड़ाने लगे, उनकी अवहेलना करने लगे।

जब श्रीकृष्ण के पुत्र उनकी बात नहीं मानते तो आपके बेटे अगर कुछ नहीं माने तो इसमें क्या बड़ी बात हो गई ? श्रीकृष्ण वैराग्य करते हैं तो आप भी वैराग्य कीजिये। कब तक राग की थप्पड़ें खाते रहोगे। **"वैराग्यरागरसिको भव।"** वैराग्य राग के ही रसिक बनो।

संसार में ऐसी कोई परिस्थिति नहीं, जो सदा एक जैसी रहे।

सांसारिक सम्बन्ध किसी के ऐसे नहीं कि सदा एक जैसे रहें। परन्तु परमात्मा और उसके साथ अपना सम्बन्ध सदा एक जैसा रहता है, शाश्वत रहता है। इस शाश्वत सम्बन्ध का अन्वेषण करना और नश्वर सम्बन्ध का सदुपयोग करके सत्य में स्थित होना, इसी का नाम सत्संग है।

मैं जवान था, तब इतने किलोमीटर सतत गाड़ी दौड़ाता था कि जयपुर से अहमदाबाद तक एक ही बैठक पर लगातार गाड़ी ले आता था। वे दिन अब याद आते हैं....!

परिवर्तित शरीर और परिवर्तित वस्तुओं को पकड़ कर तुम अगर स्मरण करते हो तो दुःख, चिंता और पश्चाताप ही हाथ लगता है। परिवर्तित वस्तुओं को परिवर्तित समझो।

श्रीकृष्ण साधु-संतों, ऋषि-मुनियों तथा महापुरूषों का आदर करते थे, उन्हे रथ में बिठाकर रथ हाँककर स्वयं उनकी सेवा करते थे और उन्हीं के कुल के उद्दण्ड लड़के साधु-संतों को देखकर उनकी खिल्ली उड़ाते थे।

एक दिन वे ही उद्दण्ड यदुवंशी कुमार खेलते-खेलते उन महापुरूषों के आश्रम पर पहुँचे। उन्होंने अपने ही एक भाई साम्ब के पेट पर मूसल बाँधकर सजाधजा कर गर्भवती स्त्री के वेश में उन महापुरूषों के सन्मुख पेश किया व बनावटी नम्रता में उनके चरणों में प्रणाम कर निवेदन किया:

"यह स्त्री गर्भवती है, इसे लड़का होगा कि लड़की ?" इस प्रकार का प्रश्न कर वे महापुरूषों की परीक्षा करने लगे।

वे महात्मा समझ गये कि ये दुर्बुद्धि हैं। उन अंतर्यामी त्रिकालज्ञ ऋषियों ने कहाः "मूर्खों ! लड़का भी नहीं होगा और लड़की भी नहीं होगी लेकिन इसके पेट पर जो मूसल बँधा है वह तुम्हारे सारे कुल का नाश कर देगा।"

श्रीकृष्ण तो साधु-संतों को देखकर प्रसन्नचित्त हो उठते और उनका आदर करते थे। साधु-संतों का हृदय श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्न होता था लेकिन श्रीकृष्ण की संतानों के दुराचरण को देखकर साधु-संतों का मन क्रोध से भर उठता था।

श्रीकृष्ण ने अपनी लीला समेटने का संकल्प किया। श्रीकृष्ण के देखते-देखते द्वारिका डूब रही है लेकिन उनके चित्त में तनिक भी क्षोभ नहीं होता क्योंकि वे जानते हैं कि सारी वस्तुएँ उत्पत्ति, स्थिति, विनाशवाली हैं। ये सारी निर्मित वस्तुएँ हैं।

स्वतः सिद्ध तत्त्व में मग्न रहने वाले श्रीकृष्ण हमें संदेश देते हैं- "तुम भी तुम्हारी द्वारिका, चाहे वह आर. सी. सी. की हो या लोहे-लकड़े की हो, उसमें चित्त को मत चिपकाना क्योंकि सोने की द्वारिका शाश्वत नहीं रही तो तुम्हारी सीमेन्ट कंक्रीट, आर.सी.सी.की द्वारिका कहाँ तक शाश्वत रहेगी? उसमें से चित्त को हटाकर स्वयं को सत्य स्वरूप की ओर लाओ।"

सत्य सदा-सर्वदा रहता है, सत्य का निर्माण नहीं होता, सत्य की खोज या सत्य का अन्वेषण होता है। अतः सत्य का अन्वेषण करना चाहिए तथा जिसका निर्माण होता है उसमें से आसक्ति को निकालकर थोड़ा अनासक्ति का अभ्यास करना चाहिए।

लड़की बने हुए साम्बा के पेट से संत-महात्माओं के शाप के कारण लोहे का मूसल निकला। यह देखकर यदुवंशी कुमार घबरा गये। वे मूसल यदुराज उग्रसेन के दरबार में ले गये और पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। उग्रसेन ने उस मूसल को चूरा करवा कर समुद्र में फिंकवा दिया। यहाँ भी उन्होंने श्रीकृष्ण से कोई सलाह नहीं ली।

लोहे के उन टुकड़ों में से एक टुकड़ा एक मछली निगल गई। मछली पकड़ने वाले मछुओं ने उस मछली को पकड़ा। उसके पेट में से जो लोहे का टुकड़ा निकला उसे जरा नामक बहेलिये ने अपने बाण की नोंक में लगा लिया।

एक बार भगवान श्रीकृष्ण एकान्त वन में एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे थे कि उनको उस बहेलिये ने दूर से भ्रम में मृग समझकर बाण मारा। बाण श्रीकृष्ण के पैरों के तलुवे में लगा। बहेलिया जब करीब आया तो देखाः

"अरे ! ये तो श्रीकृष्ण हैं !"

यह भयभीत होकर श्रीकृष्ण के चरणों में गिर कर क्षमायाचना करने लगा। तब श्रीकृष्ण कहते हैं-

"भाई ! तेरा दोष नहीं है, कर्म की गति ने विधि के विधान लिखे हैं। उसी रीति से यह सब होता है।"

वह बहेलिया कौन था?

वह रामावतार का बाली था, जिसका वध श्रीराम ने किया था।

श्रीकृष्ण उसे हँसते हुए क्षमा करते हैं और अपनी इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को स्वयं में, 'स्व' स्वरूप में प्रतिष्ठित करके अपनी लीला समेटते हैं।

श्रीकृष्ण को अपनी लीला समेटने के कुछ समय पूर्व ही धृतराष्ट ने पूछा थाः

"हे श्रीकृष्ण ! आपके प्रभाव को कुछ मात्रा में मैं जानता तो हूँ, और आप ही के प्रभाव से मुझे अपने कितने ही पूर्व जन्मोंकी स्मृति है। बाप के रहते हुए उसके सौ-सौ बेटे मर जायें और बाप को इन सबके मरण का दुःख देखना पड़े, ऐसा किस कर्म का विधान है? मैंने ऐसा कौन-सा कर्म किया है? मैं अपने सौ जन्मों तक की खोज कर डाली लेकिन कहीं ऐसा कर्म नहीं दिखाई दिया कि मुझे अपने सौ बेटों की मृत्यु के शोक में रो-रोकर मरना पड़े। हे यदुनन्दन ! आप ही कृपा करके मुझे यह बात समझाइये।"

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अपने योगबल का सहज उपयोग करते हुए धृतराष्ट्र को अन्तर्दृष्टि प्रदान की। तब धृतराष्ट्र देखते हैं कि एक राजा, जो कि उत्पत्ति और विनाश वाली स्थिति में अत्यधिक आसक्त रहता था। बाहरी जगत की वस्तुओं से अत्यधिक प्रसन्नचित्त दिखाई देता था। धन दौलत और राज्य के विस्तार तथा स्वादिष्ट व्यंजनों के स्वाद में अत्यधिक आसक्ति के कारण वह राजा शाकाहारी होने के बावजूद भी, भोजन शुद्ध व सात्त्विक है कि नहीं, यह विचार किये बिना ही भोजन पर टूट पड़ता था।

रसोइयों ने देखा कि राजा स्वाद में आसक्ति लगा बैठा है। अतः वे राजा को पक्षियों का माँस पकाकर परोसने लगे। पक्षियों का मांस खाकर राजा को अधिक आनंद आने लगा, यद्यपि था तो वह शाकाहारी लेकिन स्वाद की लम्पटता में वह पूछना भूल जाता और खाने बैठ जाता। खाकर रसोइयों को इनाम प्रदान करता। रसोइयों ने खुश होकर एक-एक करके उसे हंस के सौ बच्चों का माँस खिला दिया। पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण वह राजा तो बना था लेकिन स्वाद में आसक्ति के कारण वह अन्धा होकर बिना पूछे और विचारे ही खाने लगता था। इसलिए इस जन्म में अन्धा हुआ।

श्रीकृष्ण बताते हैं- "वह राजा कोई दूसरा नहीं, तुम धृतराष्ट ही हो। परन्तु तुम्हारे पुण्यों का प्रभाव इतना अधिक था कि इन सौ बच्चों की हिंसा करने का पाप सौ जन्मों तक तुम्हें फल देने को तत्पर न हो सका। तुम्हारे पुण्यों का समय चल रहा था। लेकिन तुम देखे बिना और विचारे बिना खाया इसलिए तुम अन्धे बने और सौ पक्षियों के बच्चों का हनन होने दिया इसलिए उसके फल के रूप में तुम्हें अपने सौ पुत्रों का हनन देखना पड़ा।"

कर्मप्रधान विश्व करि राखा।

जो जस करै तैसा फल चाखा।।

कर्म की गति अचल है। किये हुए कर्मों का फल आज मिलता है या एक दिन के बाद, एक वर्ष के बाद, एक हजार वर्ष के बाद या एक लाख वर्ष के बाद... लेकिन कर्मों का फल तो मिलता है..... मिलता है.... और मिलता ही है।

जब तक उत्पत्तिवाली वस्तुओं में "मैं" और "मेरे" के विचार आते रहेंगे तब तक कर्म का फल मिलता रहेगा। अतः स्वतः सिद्ध जो आत्मा है, उसमें "मैं" और "मेरा" जब तक नहीं करोगे, तब तक कर्म बाँधते ही रहेंगे।

कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।

श्रीकृष्ण ने अपने ऊपर भी यह नियम लागू कर दिखाया। रामावतार में बाली को मारने की आवश्यकता पड़ी तब बाली ने कहा थाः "मुझ निर्दोष को क्यों मारा है?" तब श्री राम ने कहा थाः "तू निर्दोष नहीं है। तूने अपने भाई की पत्नी और उसके राज्य के साथ अन्याय किया है। तुझे वरदान मिला हुआ था कि जो तेरे सामने आकर लड़ेगा उसकी आधी शक्ति तुझे प्राप्त हो जाएगी। इस कारण से मैंने तुझे छुपकर बाण मारा है।"

बाली ने पूछाः "प्रभु ! मेरा और आपका तो वैर भी न था। मैंने आपका क्या बिगाड़ा था जो सुग्रीव आपका मित्र और मैं आपका शत्रु हो गया?"

तब रामजी ने कहाः "मेरे मन में कोई वैरी नहीं है परन्तु अब इस जन्म में तो यह करना ही पड़ा। किसी जन्म में तू बदला ले लेना।"

यह बाली द्वापर में बहेलिया बना है। श्रीकृष्ण के साथ उसे वैर नहीं है, लेकिन कर्म की गति से प्रेरित होकर बाण मारा।

भगवान श्रीकृष्ण विदुरजी को समझाते हैं- "आहार करते समय मनुष्य को सावधान रहना चाहिए।"

महापुरूष समझाते हैं कि मुँह से आप जो खाते हैं वह बाह्य आहार है लेकिन नेत्रों के माध्यम से आप जो वस्तुएँ अन्दर ले जाते हैं वह आन्तरिक आहार है। आप कैसा दृश्य देखते हैं तथा किस रीति से देखते हैं? कृपया इसका ध्यान रखना। विवेक की छलनी सदैव पास रखनी होगी अन्यथा ये संस्कार भीतर प्रवेश कर देर सवेर पतन के मार्ग की ओर ले जाएँगे।

आप कानों से सुनते हो? राग-द्वेष में वृद्धि हो ऐसा सुनते हो, काम-क्रोध बढ़े ऐसा सुनते हो, किसी की निन्दा से राग-द्वेष उत्तेजित हों ऐसा श्रवण करते हो या परमात्मा की महिमा सुनते हुए राग-द्वेष की निवृत्ति पाकर स्वयं को, जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलाने की बातें सुनते हो, इस पर तुम्हें ध्यान रखना ही चाहिए।

तुम अपने शरीर के ऐशो आराम की चिंता करते हुए आत्मा का अहित करते हो कि शरीर को सात्त्विक, संयमी, पौष्टिक भोजन प्रदान करते हुए आत्मा की जागृति करते हो ? इस पर भी तुम ध्यान रखो।

नासिका द्वारा कैसी गन्ध लेते हो? परफ्यूम आदि से कामकेन्द्र उत्तेजित करनेवाली गन्ध लेते हो या तुलसी, गुलाब या भगवान के चरणोदक की अथवा शुद्ध या प्राकृतिक वातावरण की सुगन्ध लेते हो? इस पर भी ध्यान रखो।

इसी प्रकार मन के द्वारा तुम कैसा विचार करते हो तथा बुद्धि के माध्यम से तुम कैसे निर्णय करते हो, इस पर भी ध्यान रखो।

जब तक तुम्हें सत्संग का सार न समझाया जाय तब तक तुम्हारे निर्णय और तुम्हारे बाह्य पदार्थ तुम्हें शाश्वत सुख से दूर रखने का प्रयास करेंगे। तुम्हें जब सत्संग मिलता है तब तुम्हारी दृष्टि विवेकयुक्त होती है, निर्णय अच्छे होने लगते हैं तथा ग्रहण की गई वस्तुएँ भी पवित्र होने लगती हैं। पवित्र ग्रहण और पवित्र निर्णय ही तुममें उत्पत्ति, स्थिति और नाशवान वस्तुओं से कुछ उपरामता जगाते हैं और जो शाश्वत हैं उसके अन्वेषण हेतु तुम्हें प्रेरित करते हैं।

जगत में देखने के लिए बाहर की वस्तुओं का अनुसंधान करना पड़ता है। शरीर का अनुसंधान करो, खोजो..... तो तुम्हें कैल्शियम मिलेगा, सुगर मिलेगी लेकिन तुम स्वयं का अनुसंधान करो तो तुम्हें चैतन्य मिलेगा, आत्मा और परमात्मा की एकता मिलेगी।

ईश्वर को खोजने का अत्यधिक नजदीकी साधन है, स्वयं की खोज।

अन्वेषण स्वयं के स्वरूप का होता है और उपयोग इदं का होता है। उपयोग इदं का होता है और अन्वेषण अहं का होता है।

"मैं कौन हूँ.....?"

"मैं फलाना सेठ हूँ....।"

नहीं... झूठी बात है।

नीतिशास्त्र कहता हैः श्रीमंतों का, बड़े अधिकारियों का, अमलदारों का एवं राजाओं का हास्य निर्दोष नहीं होता। वे अपनी किसी बात अथवा अपने किसी स्वार्थ को छुपाने के लिए हँसते हैं।

निर्दोष हास्य तो उसका होता है जिसने अहं का पोषण न करते हुए आत्मा का पोषण किया है। दूसरा निर्दोष हास्य बालकों का होता है तथा तीसरा निर्दोष हास्य तत्त्व को प्रेम करने वाले भक्त का होता है।

मनुष्य जब नश्वर वस्तु को आसक्ति से जबरन ही पकड़ना चाहता है तो उसका चित्त दोषी होने लगता है और दोषी चित्त में निर्दोष हास्य का निवास नहीं रहता।

यह कितनी दुर्भाग्य की बात है कि मनुष्य निर्दोष हास्य भी नहीं कर सकता ! हास्य में भी बनावटीपन? Artificial......!

मैं अमेरिका गया तो यह देखकर दंग रह गया कि वे लोग सत्संग नहीं करते, ध्यान नहीं करते, वेदान्त का अमृतपान नहीं करते फिर भी इतना अधिक हँसते-मुस्कराते हैं कि मुझे सोचने पर विवश होना पड़ा कि आज तक मेरी धारणा ही झूठी रही है।

प्लेन में बैठो तब चाहे रास्ते में कोई मिले तब सब भाँति-भाँति से हँसते मुस्कराते हैं। फिर मैंने सूक्ष्मता से अध्ययन किया तो पता चला कि वे लोग हँसने-मुस्कराने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं लेकिन लाख कोशिशों के बाद भी उनके हृदय में वह आनंद, वह मुस्कराहट तो प्रकट होती ही नहीं।

'हलो..... हाय...' बम्बई में तुम्हें इस प्रकार का हास्य मिलेगा, सेल्समैन के पास तुम्हें ऐसा हास्य मिलेगा, श्रीमंतों के पास और कपटी अधिकारियों के पास ऐसा हास्य मिलेगा।

कोई सज्जन अधिकारी होगा तो उसका हास्य सात्त्विक होगा, सज्जन नेता और सज्जन राजा होगा तो उसका हास्य निर्दोष होगा, किन्तु नीतिशास्त्र यह कहता है कि प्रायः ऐसे लोगों के हास्य पर तुम्हें ज्यादा विश्वास नहीं करना चाहिए।

श्रीमंत का हास्य है तो सावधान ! बड़े सेठ का हास्य है तो सावधान किन्तु श्रीकृष्ण के हास्य पर सावधानी की कोई आवश्यकता नहीं। अपने को असावधान करके अपना जीवन श्रीकृष्ण की बाँसुरी की धुन पर नाचने के लिए सौंप दो।

श्रीकृष्ण का हास्य दुःखनिवारक है। श्रीकृष्ण का हास्य श्रीकृष्ण की मधुरता, तुम्हारे चित्त में छुपी हुई मधुरता जगाने के लिए है।

दुर्योधन के हठी स्वभाव के कारण धृतराष्ट्र अत्यधिक अशांत था। युद्ध टालने के सारे प्रयास विफल होने पर उसने विदुरजी को बुलवाया।

विदुरजी कहते हैं- "महाराज धृतराष्ट्र ! आप व्यवहार में कपट छोड़ दीजिए। **'मामका पाण्डवाश्चैव'** (मेरे और पांडु के) ऐसा नहीं, पाण्डवों को भी अपना मानिये। आप जो कपटपूर्ण व्यवहार कर रहे हैं, उसका परिणाम बुरा ही निकलेगा। आप दुर्योधन के कहने में लगे हैं। दुर्योधन और शकुनि में कलि पूर्णरूप में अवतरित होकर आया है। दुर्योधन आपके कुल का विनाश कर देगा इसलिए महाराज ! आप सावधान हो जाइये। यही हितकर है।"

एकान्त में खामोशी के साथ जासूसी करने खड़ा हुआ दुर्योधन यह सब सुनकर आग बबूला हो उठा। उसने विदुरजी को अनेकानेक दुर्वचन कहे। विदुरजी ने अपने धनुष बाण वहीं रख दिये ताकि कोरवों को यह न लगे कि वे पाण्डवों के पक्ष में युद्ध कर रहे हैं। विदुरजी ने वैराग्य का आश्रय लिया है।

राग तुम कहाँ तक करते रहोगे ? जो उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयवाली वस्तु है उसे तुम कब तक पकड़ रखोगे ? रूपया-पैसा कब तक पकड़ रखोगे ? संबंधों को कब तक पकड़ रखोगे भैया.... ? तुम अपनी देह को कब तक पकड़ रखोगे ? ये सभी सरकने वाले पदार्थ हैं। इन्हें नहीं पकड़ रखोगे तो भी प्रारब्धानुसार रहेंगे। इस प्रकार का अन्वेषण किया जाय और जिसे पकड़ रखना नहीं पड़ता उसकी पूर्ण खोज की जाय तो बेड़ा पार हो जाएगा।

जो नश्वर है उसकी नश्वरता जान लो और जो शाश्वत है उनका स्वरूप खोज लो, बिल्कुल निश्चितंता और त्रिगुणातीत स्थिति प्राप्त हो जायेगी।

'प्रज्ञानं ब्रह्म.....।'

तुम्हारे हितैषी सत्शास्त्र और सत्पुरूषों की ओर अपने चित्त को प्रवाहित करो। इन्द्रियों के विकार और देह के आकर्षणों की ओर तुम्हें तटस्थ रहना होगा।

धृतराष्ट्र अगर तटस्थ रहता तो यह स्थिति निर्मित ही न होती। वह तटस्थ नहीं रहा इसीलिए यह स्थिति निर्मित हुई। इसी प्रकार यह जीव रूपी धृतराष्ट्र भी तटस्थ नहीं रहता है इस कारण मृत्यु के समय हाहाकार मच जाता है। जीव अगर तटस्थ रहे तो मृत्यु के समय 'मेरी मृत्यु हो रही है' ऐसा भ्रम नही रहेगा। मृत्यु के समय न तुम्हें कुछ दुःख होगा और न कुछ विचार आएगा।

कबीर जी कहते हैं-

मरो मरो सबको कहे मरना न जाने कोई।
एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होई।।

आपके चित्त को, आपके साक्षी स्वरूप को, "मैं" जहाँ से उत्पन्न होता है उसके अन्वेषण के लिए लगाओ तो तुम्हारा चित्त वास्तव में चैतन्यमय हो जाएगा।

झूठ, हिंसा, व्यभिचार आदि का त्याग करने से शरीर शुद्ध होता है। भगवन्नाम जप करने से वाणी शुद्ध होती है। दान एवं सत्कर्म से धन शुद्ध होता है। ध्यान और धारणा से अन्तःकरण शुद्ध होता है और ऐसे शुद्ध अंतःकरण में शुद्ध स्वरूप आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार कर लोगे तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जायेगा। शुद्ध अंतःकरण में अन्वेषण करोगे तो वह प्यारा जो सदा है, सर्वत्र है, शाश्वत है, यहाँ है, अभी भी है और जो कभी भी तुम्हारा त्याग नहीं करता, वह देवों का देव तुम्हारे चित्त में प्रकट हो जाएगा।

'मुझमें यह गुण है... वह गुण है....' ऐसा मानना अवगुण ही है। स्वयं में गुणों का आरोप करना अर्थात् अंतःकरण को मलिन करना है। अपने में गुणों का आरोप हो तो सावधान हो जाओ। अपने में जो अवगुण हैं उन्हें निकालते हुए स्वच्छ होते जाओ तथा गुणों का आरोप न करो। 'गुण प्रकृति के हैं, मेरा तो परमात्मा है और मैं परमात्मा का हूँ' इस प्रकार के विचार तुम्हारे अन्वेषण में निकट के मित्र हैं।

मनुष्य जब गलती करते हुए गुणों को अपने में थोपता है अथवा अवगुणों का चिंतन कर या विकारों में रस लेकर अपने को क्षणिक सुख में उलझाता है, तब वह अयोग्य होने लगता है। लेकिन अवगुणों को जब वह तटस्था से निकालने में लगता है तब वह योग्य होने लगता है तथा अपने में गुण आरोपता नहीं है।

'गुण सात्त्विक प्रकृति के हैं' ऐसा करके जो गुणों में भी अपना अहं नहीं जोड़ता, उसका अहं शुद्ध रूप में आत्मा-परमात्मा के रूप में उसको दिखाई देता है।

अन्वेषण का यह नियम है कि अपने तो झूठ, हिंसा, व्यभिचार आदि से बचाकर शरीर को शुद्ध रखें। भगवन्नाम जप करके मन और वाणी को शुद्ध करें, दान आदि से धन को शुद्ध करें, धारणा-ध्यान समाधि से अंतःकरण को शुद्ध करें तथा 'स्व' का अन्वेषण करके शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार करके यहीं पर मुक्ति का अनुभव प्राप्त कर ले।

शुभ आचरण का पालन व अशुभ का त्याग, इससे अंतःकरण शुद्ध होता है, उपासना का अधिकार प्राप्त हो जाता है। जिसे उपासना का अधिकार सिद्ध हो जाता है उसके पास शक्तियाँ आने लगती हैं।

पैठण में सुप्रसिद्ध दण्डवत् स्वामी रहते थे। वे एकनाथ जी महाराज के शिष्य थे। उनकी भक्ति भी कैसी..... वन्दना भक्ति....। **'हरि व्यापक सर्वत्र समाना....'** सर्वत्र मेरा भगवान है, कहीं धन सुषुप्ति में, कहीं शून्य सुषुप्ति में, कहीं स्वप्न में कहीं जाग्रत में..... उस भगवान को मेरा वन्दन....' ऐसी शास्त्रीय धारणा करके उन्होंने वन्दना भक्ति की थी। कोई भी सामने मिल जाए, उसे वंदन करना, चाहे कोई भी मिल जाए।

मुझे एक उच्च कोटि के संत के भक्त ने बताया था कि, 'डोंगरे जी महाराज हमारे गुरूजी को दण्डवत् प्रणाम करते थे।' उसने उनके फोटो भी दिखलाय तो मैंने कहाः 'डोंगरे जी गुरूजी को प्रणाम करें, यह तो ठीक है, स्वाभाविक है, लेकिन डोंगरे जी अगुरू को भी प्रणाम करने में देर नहीं करते थे। गुरू हैं, उन्हें तो वे प्रणाम करते ही थे, लेकिन चवन्नी अठन्नी पर नजर रखने वाले पुजारियों को भी वे प्रणाम कर देते थे, ऐसी उनकी स्वाभाविक ही सरलता थी।"

कोई सामने वाला प्रणाम कर देता है, इसमें अपना गुण मत मानो। यह उनकी सज्जनता है। सामनेवालों की निर्धनता को अपने धन का गुण नहीं मानना चाहिए।

सामने वालों की निर्धनता से आप अपने धनवान होने का अहं ले आते हैं। सामने वाला कुछ अनपढ़ है तो आप अपने में पढ़े हुए का अहं ले आते हैं और सामने वाला यदि आपको स्नेह करता है या सज्जन होता है, विनम्र होता है तो आप स्वयं को चतुर मान लेते हैं। वास्तव में यह नापतोल सही नहीं है।

सामने वाले की अज्ञता को अपना ज्ञान मानना, सामनेवाले की कमजोरी को अपना जोर मानना, सामनेवाले की निर्धनता को अपना धनाढ्यपना मानना, यह केवल अविद्या और बेवकूफी का ही परिवार है।

गरीबी-अमीरी, अनुकूलता-प्रतिकूलता ये वास्तविक तथ्य नहीं हैं।केवल चार दिन का दिखावा मात्र है। न तो सचमुच गरीबी रहतीहै और न ही अमीरी, न अनुकूलता रहती है और न ही प्रतिकूलता। ये सब बहनेवाले, भागने वाले हैं। शत्रु भी सदा नहीं रहते तो मित्र भी सदा नहीं रहते, लेकिन शत्रु और मित्र का भाव जिस मन में बनता है, उस मन को जो देखता है वह **'सोऽहं'** स्वरूप सदा रहता है। इस **'सोऽहं'** स्वरूप में स्थिर रहने का प्रयत्न करना उत्तम साधना है।

एकनाथजी महाराज के वे कृपापात्र शिष्य वन्दना भक्ति करते थे।

जिस किसी को देखते, वंदन कर देते, दण्डवत् कर देते। इससे लोग उन्हें दण्डवत् स्वामी या वन्दनवाला बाबा कहकर भी पुकारते थे।

भक्त को देखकर सब लोग खुश हो, यह जरूरी नहीं है। जिसका हृदय पवित्र है वही भक्त को देखकर, संत को देखकर खुश होता है और जिसके हृदय में शराब, कबाब या कुकर्म का प्रभाव होता है वह भक्त को देखकर मजाक उड़ाएगा यह स्वाभाविक ही है।

भक्त को डगमगाने वाले दूसरे कोई तो ठीक बल्कि कुटुम्बी भी होते हैं। प्रायः भक्त को डगमगाने में भक्त के भाव ही मुख्य भूमिका निभाते हैं। उन वंदना स्वामी, दण्डवत् करने वाले स्वामी को उनका मन उनकी भक्ति में दगा न दे सका। उनकी भक्ति में सामर्थ्य का प्रकाश स्फुरित होने लगा। उनकी उपासना में शक्तियों का प्राकट्य होने लगा।

एक समय पैठण में जहाँ से वे गुजर रहे थे, वहाँ एक मृतक गधा पड़ा हुआ था। उस गधे के दिखलाते शैतान व अवारा किस्म के निगुरे लोगों ने दण्डवत् स्वामी से कहाः

"तुम गधे को प्रणाम करते हो और हमको भी प्रणाम करते हो तो यह मरा हुआ गधा पड़ा है, इसे भी प्रणाम करो। सभी में भगवान है तो इसमें भी होंगे, प्रणाम करो।"

दण्डवत् स्वामी ने कहाः "मेरा भगवान सभी में है, तो इसमें भी है।" यह कहते हुए उस मरे हुए गधे को प्रणाम किया। वह मरा हुआ गधा, जिसका अंतःकरण निकल गया था, दण्डवत् स्वामी के संकल्प से उसका अंतःकरण पुनः उसमें जा बैठा और गधा जीवित हो उठा।

गधा जीवित होते ही लोगों ने खूब प्रशंसा की तब दण्डवत स्वामी कहते हैं-

"आप लोग तो व्यर्थ की प्रशंसा कर रहे हैं। मैंने तो कुछ किया ही नहीं। जो कुछ हुआ वह प्रकृति के गुणों से हुआ।"

कुछ समय पश्चात् वे अपने गुरूदेव के पास गये और पूरी बात सुनाई। तब गुरूदेव ने कहाः

"तुमसे भूल हो गई। तुमने अनजाने में यह संकल्प किया था कि जीवित हो जा। ये लोग देखेंगे। इस कारण ही उसका अंतःकरण वापस आया है। अब किसी यवन का भी गधा मरेगा तो वह आकर तुम्हें खींचकर ले जाएगा, किसी की गाय-भैंस या कुटुम्बी मरेंगे तो भी तुम्हें ले जाएँगे कि इसे जीवित करो। तुम अब प्रयास न करोगे यह सत्य है लेकिन यह उल्टा संसार अनभिज्ञता

में तुम्हें ही कर्त्ता मानकर परेशान करेगा, मजबूर करेगा और इस समय में यवनों का वर्चस्व अधिक है, इसलिए तुम्हारे इन्कार करने पर वे तुम्हें कैद कराने का प्रयत्न करेंगे। तुमसे यह बहुत बड़ी भूल हो गई है।"

दण्डवत् स्वामी उपाय पूछते हैं तब गुरूदेव कहते हैं-

अब तुम विख्यात होगे और गधा जीवित करने वाले महात्मा के रूप में तुम्हें खींचा जाएगा, इससे तुम्हारी भक्ति और उपासना उपास्य तत्त्व का साक्षात्कार किये बिना ही बिखर जाएगी। अतः जब तक भक्त को अपने शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार न हुआ हो, तब तक ऐसी झंझटों में नहीं उलझना चाहिए।"

एकनाथ स्वामी का आदेश व सलाह शिरोधार्य कर दण्डवत् स्वामी ने एकान्त में ध्यान, प्राणायाम आदि के माध्यम से अपनी चेतना ऊपर के केन्द्रों में लाकर जीवित समाधि ले ली।

उस जमाने में असंख्य ब्राह्मण पैठण में एकनाथ जी का कुप्रचार करते रहते थे। एकनाथ जी उस कुप्रचार से किंचित भी विचलित नहीं होते थे।

आप अगर भक्ति की राह पर चलते हो तो किसी भी प्रकार से आपका थोड़ा कुप्रचार तो होगा ही। सुप्रचार और कुप्रचार तो भक्ति करोगे तो भी होंगे, धन्धा करोगे तो भी होंगे और आफिस में जाओगे तो भी होंगे। यह तुम्हारे विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

तुम्हारी प्रशंसा करवाकर परमात्मा तुम्हारे उत्साह की वृद्धि करता है, इसलिए वह प्रशंसकों को प्रशंसा की प्रेरणा देता है तथा तुम्हारा अहंकार और दोष धोने के लिए निंदकों की सृष्टि करके परमात्मा तुम्हें शुद्ध करता है। अतः दोनों रूप में तुम्हें लाभ है.... तुम्हारे दोनों ही हाथों में लड्डू है भैया.....

प्रशंसा होती है तो प्यारे को प्यार करो किः 'तू प्रशंसको में प्रेरणा करते हुए मेरा उत्साह बढ़ा रहा है, वाह रे वाह मेरे प्यारे प्रभु.....!' कहीं निंदा होती हो तोः '.....आहऽऽ... दोषों को निकलने के लिए तू बहुत सुन्दर व्यवस्था करता है.... प्रभु !'

आज तक मुझे कोई ऐसा मनुष्य देखने में ही नहीं आया जिसकी किसी ने निन्दा न की हो। एक भी निन्दक जिसका न हो ऐसा मेरी दृष्टि में मानव तो क्या कोई भी देवता भी नहीं है। देवों के देव श्रीकृष्ण और श्रीराम भी अवतरित हुए तो उनका भी किसी न किसी रूप में बिगाड़ करने वाले हमने सुने ही हैं।

इसलिए जहाँ बदनामी होती हो वहाँ सावधान हो जाना चाहिए। दोष है तो निकाल दो और दोष नहीं है तो निर्दोष नारायण को धन्यवाद देकर सतर्क हो जाओ।

अंतःकरण की शुद्धि का ध्यान रखने वाले साधक को यह बात अच्छी तरह से व्यवहार में लानी चाहिए कि प्रशंसा हो या अनुकूलता आती हो तो समझना चाहिए कि यह सब उपार्जित है और प्रतिकूलता आती हो तो भी यह समझना चाहिए कि यह भी उपार्जित है। शाश्वत तो मेरा राम है.... उस तत्त्व में शीघ्र ही आ जाना चाहिए।

उन दण्डवत् स्वामी ने जीवित समाधि ले ली परन्तु एकनाथ जी महाराज के विरोधी लोगों ने इस बात का गलत फायदा उठायाः "एकनाथ जी महाराज ने अपने शिष्य को ऐसा गलत आदेश दिया कि शिष्य जीवित समाधि माने आत्महत्या करके मर गया। ऐसे संत यदि समाज मे रहेंगे तो समाज का सत्यानाश हो जाएगा।"

धर्मान्ध लोग एकनाथ जी महाराज को समाज (जाति) से बाहर करने आयेः

"तुम संस्कृत भाषा और सामान्य भाषा में कथा करते हो और जो कोई भक्त कुछ लाकर देता है, उसको खाते हो, स्वीकार कर लेते हो कि इसका प्रेम है, और फिर अपने ही दण्डवत् स्वामी जैसे शिष्य को ऐसा उपदेश दिया कि वह आत्महत्या करके मर गया।"

चारों तरफ से एकनाथ जी का विरोध हुआ परन्तु उनके चित्त में तनिक भी क्षोभ न हुआ क्योंकि वे अन्वेषण के जगत में प्रवेश कर चुके थे।

मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि तुम अन्वेषण के जगत में अब प्रवेश करोगे। फिर नात-जात, अपना देश व पराया देश भी कभी तुम्हें पापी अथवा दोषी ठहरावें तो भी अन्दर का तुम्हारा अनुभव वे छीन नहीं सकते। तुम्हारा शरीर प्रारब्ध की जिस रीति के अनुसार जाना है, जाएगा लेकिन तुम्हारी स्मृति लोगों में रहेगी और तुम्हें अमरपद की प्राप्ति होगी।

मक्कार लोग वाहवाही करेंगेः "वाह सेठ ! फलाना सेठ !" किन्तु तुम यदि अन्वेषण के जगत में नहीं आये तथा गुरू के साथ तुम्हारा सम्बन्ध जुड़ा नहीं तो पूरी दुनिया की वाहवाही मिलने के बाद भी असली आनन्द गँवा बैठोगे। और यदि संतों के साथ, गुरूदेव के साथ, भगवान के साथ ईमानदारी का स्नेह होगा तो पूरा जगत भले ही तुम्हें किसी अन्य तरीके से गिने या उपेक्षा करे फिर तुम्हारे हृदय में चिदानन्द चैतन्य ब्रह्मस्वरूप का आनन्द झलकता ही रहेगा। अतः कृपा करके स्वयं को परेशान मत करो। स्वयं को कष्ट की ओर न धकेलो। आप वैसे ही बहुत कष्ट सह चुके हो। जन्मे थे तब कितने कष्ट सहने करके आये थे....! अभी भी कितने कष्ट हैं !...... और पुनः मौत का कष्ट खड़ा ही है।

अतः कृपानाथ ! अपने को अधिक परेशान मत करो। स्वयं को सताओ भी मत। आपने स्वयं को बहुत सताया... बहुत जुल्म किया अपने पर... बहुत धोखा किया, अब तो रूको !

सेठ और नेता बनकर उदघाटन करने, वाहवाही पाने को दौड़ जाते हो लेकिन अपने हृदय का तो उदघाटन करो भैया.....! अपने को वाहवाही में उलझाओ मत....सेवा करो लेकिन वाहवाही के लिए नहीं, परमात्मा के लिए सेवा करो। ध्यान करो लेकिन नश्वर के लिए नहीं, शाश्वत के लिए करो। रोओ लेकिन नश्वर के लिए नहीं बल्कि प्रभु को रिझाने के लिए रोओ। जोर जोर से रोओ किः "तू मिलता नहीं..... गुरू में श्रद्धा होती नहीं...।" यह बन्दगी हो जाएगी, तपस्या हो जाएगी।

किसी को हम पूछते हैं- "कैसे हो ?" तो वह खुशी दिखाने के लिए हँसता हैः "हा... हा... हा...।"

अरे, धोखा मत करो अपने से। अन्दर मस्ती नहीं होगी तो बाहर की "हा.... हा.... हा...." कहाँ तक तुम टिका सकोगे ?

पड़ा रहेगा माल खजाना, छोड़ दिया सुत जाना है।
कर सत्संग अभी से प्यारे, नहीं तो फिर पछताना है।
खिला-पिलाकर देह बढ़ाई, वह भी अग्नि में जलाना है।।

देह अग्नि में जल जाये उसके पहले हमारा जीवन ज्ञान की अग्नि में पावन हो जाये... ऐसा कुछ प्रयत्न करो। कुटुम्बी स्मशान में शव को पहुँचा दें उसके पहले अपने को राम में पहुँचा दो, इसमें तुम्हारे बाप का बिगड़ता क्या है ?

लोगों ने एकनाथजी महाराज के साथ अन्याय किया लेकिन एकनाथ जी ने खुद ने अन्याय नहीं किया था इसीलिए वे अभी भी आदरणीय और पूजनीय माने जाते हैं।

लोग तुम्हारे साथ प्रेम करें परन्तु यदि तुम अपने साथ अन्याय करते हो तो तुम मिट जाओगे। तुम यदि अपने साथ न्याय करते हो तो तुम्हें कोई नहीं मिटा पाएगा।

आप जानते हैं कि क्या करना चाहिए। आप जानते हैं कि धोखा कहाँ हो रहा है। आप जानते हैं कि कर्त्तव्यच्युतता कहाँ हो रही है....। अपने मुख्य कर्तव्य आत्मस्वभाव की जागृति में आप कहाँ पीछे रहते हैं.... अपनी नैतिकता में आप कहाँ पिछड़ते हैं..... यह आपको पता है फिर भी दोषों को गहराई में उतारकर आप गुणों को बिखेरते जाते हैं।

नहीं....। दोषों को निकाल फेंको तथा गुणों को स्वयं में स्थिर कर लो। गुण मुझमें हैं, ऐसा अभिमान न करो बल्कि गुण गुणी आदमी को दे दो, तो तुम एकनाथजी की भाँति हल्के-फुल्के फूल जैसे हो जाओगे।

एकनाथ जी को सभी लोग जाति से बाहर निकालते हैं और उनके द्वार पर 'हुर्रे...हुर्रे...' चिल्लाते हैं लेकिन उनके चित्त में हरि ही हरि है। पूरा गाँव उनके विरोध में नारे लगाता है किन्तु एकनाथ जी के पेट का पानी तक नहीं हिलता। ब्राह्मण लोग द्वार पर आये हैं, अच्छा है। जिस भाव से भी आये हैं किन्तु आये तो हैं।

एकनाथ जी उनसे कहते हैं- "तुम्हारा स्वागत है।"

ब्राह्मण लोग कहते हैं- "हमें स्वागत नहीं चाहिए। ज्ञानेश्वर महाराज ने भैंसे के मुख से वैदिक मंत्रों का उच्चारण करवाया था तो आप भी इस पत्थर के नन्दी को घास खिलाकर दिखला दो।"

एकनाथ जीः "मैं ऐसा कुछ नहीं करता और न ही मुझमें कोई चमत्कारिक शक्ति है।"

लेकिन उन लोगों ने तो जिद्द पकड़ ली। उस वक्त मुसलमानी शासन का अपना जुल्म था तथा ब्राह्मणों के संगठन का समय था। प्रकृति को भी शायद यही मन्जूर था। एकनाथजी महाराज के अनुनय विनय का उन लोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्ततः एकनाथ जी घासका पूला उठाकर मंदिर के प्रांगण में स्थित उस पत्थर के नन्दी के सम्मुख रखा और नन्दी ने घास खाने

के लिए अपनी जीभ बाहर निकाली। यह देखकर सारे ब्राह्मण थर-थर काँपते हुए एकनाथ जी के चरणों में गिर पड़े।

आज भी महाराष्ट्र में उस नन्दी की देवली और समाधि लिए बैठे एकनाथजी के सत्पात्र दण्डवत् स्वामी की प्रतिमा का दर्शन करने लोग जाते हैं।

जिस समय यह घटना घटी होगी उस समय कितनी सत्य रही होगी ! लेकिन आज तो यह केवल एक स्वप्नवत् वार्ता बनकर रह गई। इतने-इतने चमत्कार हुए वे भी वार्ता रूप हो जाते हैं, स्वप्नवत हो जाते हैं अतः हमें शिवजी के इस वचन को बार-बार याद करना चाहिएः

उमा कहऊँ मैं अनुभव अपना।
सत्य हरि भजन, जगत सब सपना।।

नन्दी ने मुँह खोलकर घास खाया तो भी क्या और तुम पानी के ऊपर चलकर उस पार पहुँच गये तो भी क्या ? पृथ्वी में यहाँ घुसे और कलकत्ता में निकले तो भी क्या ? अन्ततोगत्वा शरीर मिट्टी में मिले उसके पहले अपने चित्त को चैतन्य में मिला दो तो बेड़ा पार हो जाएगा।

'ईश्वर से कुछ चाहना' यह स्वार्थ है, लेकिन 'ईश्वर को चाहना' यह परमार्थ है।

निर्माण में आसक्ति करना जन्म मरण के चक्कर में पड़ना है तथा अपने 'मैं' का अन्वेषण करना मुक्ति का पासपोर्ट पाना है।

जो **'इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम्'** करता है, उसे अन्वेषण का समय मिल जाता है और वह सदा सर्वदा सर्वत्र सबमें तथा अपने में जो पूर्ण पुरूषोत्तम छुपा हुआ है, उसका साक्षात्कार करके मुक्ति का अनुभव कर लेता है।

अन्वेषण अर्थात् खोजने की रीति, परमात्मा को खोजने की रीति। अगर यह जीवन में आ जाय तो फिर वह परमात्मा बहुत ही सरलता से प्राप्त हो जाता है। अगर नहीं मिलता है तो समझ लीजिए कि नश्वर वस्तुओं का आकर्षण अभी भी आपमें अवश्य है, अहं को सुरक्षित रखने का भीतरी आकर्षण मौजूद है या मिट जाने वाले पदार्थों में सत्यबुद्धि है इसलिए वह परमात्मा नहीं मिलता। पूर्ण गुरू हो और पूर्ण तैयारी हो तो चुटकी बजाते ही वह मिल जाता है।

मूंआ पछीनो वायदो नकामो, को जाणे छे काल।
आज अत्यारे अब घड़ी साधो, जोई लो नगदी रोकड़ माल।।

ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में, अन्वेषण के मार्ग में हम जाते हैं तो तीन सोपान आते हैं-

पहलाः स्थूल प्रकार के आकर्षणों को मिटाने के लिए स्थूल प्रकार की सेवा, साधन, भजन आदि।

दूसराः ध्यान, भजन, और सत्संग मिलने पर मध्यम अवस्था प्राप्त होती है।

तीसरा सत्संग में निर्दिष्ट साधन के अनुसार गुरूकृपा को जब पचाने की योग्यता आती है तो पर्दा दूर हो जाता है। बस ! इतना ही तो है....! ईन....मीन.... और तीन कदम ही तो चलना है, अधिक नहीं। ..... और ये कदम अगर संसार को सत्य मानकर उठाते हो तो हजार कदम

चलो तो भी आपकी पहुँच के बाहर है अर्थात् नहीं पहुँच सकते हो, परन्तु इस संसार को स्वप्नवत और आत्मा को सत्य समझकर गुरूनिर्दिष्ट व शास्त्रनिर्दिष्ट रीति के अनुसार तुम यदि तत्पर हो जाते हो तो तीन कदम ही चलना है। आत्म-साक्षात्कार होगा तब होगा परन्तु अभी स्वर्ग और वैकुण्ठ का सुख तो दिल में मुफ्त ही उभर रहा है....।

पुण्य तो यहाँ सत्संग में यूँ ही मिल जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, घृणा, ईर्ष्या इत्यादि दुर्गुण तो यहाँ सहज ही निवृत्त हो जाते हैं। जिसे त्यागने के लिए तपस्वियों को 12-12 वर्ष तक तप करना पड़ता है, फिर भी छूटते नहीं, लेकिन कथा में, सत्संग में ये सब सहजता से भाग जाते हैं। बताओ, यहाँ किसके दिल में है अभी काम-वासना....? न किसी को यहाँ अभी क्रोध है, न लोभ है और न ही मोह है। अभी तो आऽऽ.... हा.... अपने दिल में भगवान के प्रति प्यार लेकर सब उसके प्यारे बनकर बैठे हैं।

सत्संग सहज में ही असंत को संत बना देता है। असाधक को साधक बना देता है, अभक्त को भक्त बना देता है, अज्ञानी के दिल में ज्ञान भर देता है और भगवान से खाली दिल में भगवान भर देता है।

सत्संग धन से बड़ा होता है, सत्संग रिद्धि-सिद्धि से भी बड़ा होता है, यह अष्ट सिद्धियों से भी बड़ा होता है... अरे ! सत्संग तो ईश्वर के ऐश्वर्य से बड़ी होता है..... अरे ! सत्संग तो ईश्वर के ऐश्वर्य से भी बड़ा होता है।

जिनके हृदय में सत्संग प्रकट हुआ, ऐसे शुकदेवजी महाराज कितने महान होंगे ? ऐसे वेदव्यास जी एकनाथ जी महाराज कितने महान होंगे...? ॐ....ॐ.....ॐ.......

ऐ पाठक ! वे तो महान होंगे। अब आप महान होने का अभी से संकल्प करो और उस संकल्प को रोज-रोज दुहराओ।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

योग और आरोग्यता

ऊर्जायी प्राणायाम

प्राणायाम के अनेक प्रकार हैं। 64 प्रकार के प्राणायाम पूज्य श्री लीलाशाह बापूजी जानते थे। उसमें से एक प्राणायाण ऊर्जायी प्राणायाम है।

विधिः पद्मासन या सुखासन में बैठकर गुदा का संकोच करके मूलबंध करें। अब दोनों नथुनों को खुल्ले रखकर संभव हो सके उतने गहरे श्वास लेकर नाभि तक के प्रदेश को श्वास से भर दें। नथुनों, कंठ और छाती पर श्वास लेने का प्रभाव पड़े उस रीति से जल्दी-जल्दी श्वास लें।

सदगुरू केवल सत्शिष्यों को ही यह विधि बताते हैं।

एकाध मिनट कुंभक करके बाँये नथुने से श्वास धीरे-धीरे छोड़ें। ऐसे दस ऊर्जायी प्राणायाम करने से पेट का शूल, वीर्य विकार, स्वप्नदोष, प्रदर रोग(स्त्रियों को पानी गिरने की बीमारी), लाखों रूपये खर्च करने से भी न मिटें ऐसे धातु संबंधी रोग मिटते हैं। इस ऊर्जायी प्राणायाम और 'यौवन-सुरक्षा' (संत श्री आसारामजी आश्रम से प्रकाशित) पुस्तक में बताये गये खान-पान संबंधी नियमों के पालन से सहज में ही लाभ होता है।

इस ऊर्जायी प्राणायाम और 'यौवन-सुरक्षा' पुस्तक का लाभ चौदह वर्ष की उम्र से लेकर सत्तर वर्ष की उम्र तक के लोगों को निश्चित ही लेना चाहिए। प्राणायाम करने चाहिए। सुगठित शरीर, लंबी आयु, निर्णयशक्ति, तनावरहित जीवन और सुख शांति का अनुभव कराने में ऊर्जायी प्राणायाम और 'यौवन सुरक्षा' पुस्तक खूब सहाय करते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अग्निसार क्रिया

अग्नाशय को प्रभावित करने वाली यह योग की प्राचीन क्रिया लुप्त हो गयी थी। घेरण्ड ऋषि पाचन-प्रणालि को अत्यधिक सक्रिय रखने के लिए यह क्रिया करते थे। इस क्रिया से अनेक लाभ साधक को बैठे-बैठे मिल जाते हैं।

विधिः वज्रासन में बैठकर हाथों को घुटनों पर रखें। सामने देखें। श्वास बाहर निकाल कर पेट को आगे-पीछे चलायें। पेट को चलाते वक्त श्वास बाहर ही रोक रखें। जब आप पेट चलाते हैं तब कन्धों को न हिलायें। एक बार जब तक श्वास बाहर रोकी हुई है तब तक पेट चलाते रहें। एक बार श्वास छोड़कर करीब 20 से 40 बार पेट को अंदर बाहर करें, फिर पेट चलाना बंद करें और लँबी-गहरी श्वास लेना-छोड़ना शुरू करें। चार-पाँच बार लँबी गहरी श्वास लेने छोड़ने के बाद फिर से श्वास बाहर छोड़कर पेट को चलाने की इस क्रिया को 4-5 बार दोहरायें।

लाभः अग्निसार क्रिया से पाचन सुचारू रूप से चलता है। साधना में अधिक देर तक बैठने के बाद भी अजीर्ण नहीं होता और पेट का मोटापन कम हो जाता है। पेट के अनेक विकार दूर हो जाते हैं जैसे कब्ज (कोष्ठबद्धता), अल्सर, गैसेस, डकारें आदि की शिकायतें बंद हो जाती हैं। पेशाब में जलन कम हो जाती है। बार-बार पेशाब का आना या बहुमूत्र का होना इस क्रिया से बंद हो जाता है। भूख अच्छी लगती है। अधिक देर बैठकर साधना करने वालों को अजीर्ण आदि नहीं होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ब्रह्ममुद्रा

ब्रह्ममुद्रा योग की लुप्त हुई क्रियाओं में से एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा है। ब्रह्मा के तीन मुख और दत्तात्रेय के स्वरूप को स्मरण करते हुए व्यक्ति तीन दिशा में सिर घुमाये ऐसी यह क्रिया है अतः इस क्रिया को ब्रह्ममुद्रा कहते हैं।

विधिः वज्रासन या पद्मासन में कमर सीधी रखते हुए बैठें। हाथों को घुटनों पर रखें। कन्धों को ढीला रखें। अब गर्दन को सिर के साथ ऊपर नीचे दस बार धीरे-धीरे करें। सिर को अधिक पीछे जाने देवें। गर्दन ऊपर नीचे चलाते वक्त आँखें खुली रखें। श्वास चलने देवें। गर्दन को ऊपर नीचे करते वक्त झटका न देवें। फिर गर्दन को धीरे-धीरे दाँये-बाँये 10 बार चलाना चाहिए। गर्दन को चलाते वक्त ठौड़ी और कन्धा एक ही दिशा में लाने तक गर्दन तक घुमायें। इस प्रकार गर्दन को 10 बार दाँये-बाँये चलायें और अन्त में गर्दन को गोल घुमाना है। गर्दन को ढीला छोड़कर एक तरफ से धीरे-धीरे गोल घुमाते हुए 10 चक्कर लगायें। आँखें खुली रखें। फिर दूसरी तरफ से गोल घुमायें। गर्दन से धीरे-धीरे चक्कर लगायें। हो सके तो कान को कन्धों से लगायें। इस प्रकार ब्रह्ममुद्रा का अभ्यास करें।

लाभः सिरदर्द, सर्दी-जुकाम आदि में लाभ होता है। ध्यान-साधना-सत्संग के समय नींद नहीं आयेगी। आँखों की कमजोरी दूर होती है। चक्कर बँद होते हैं। उल्टी, चक्कर, अनिद्रा और अतिनिद्रा आदि पर ब्रह्ममुद्रा का अचल प्रभाव पड़ता है। जिन लोगों को नींद में अधिक सपने आते हैं वे इस मुद्रा का अभ्यास करें तो सपने कम जाते हैं। ध्वनि-संवेदनशीलता कम होती है। मानसिक अवसाद (DEPRESSION) कम होता है। एकाग्रता बढ़ती है। गर्दन सीधी रखने में सहाय मिलती है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

घुटनों के जोड़ों के दर्द के लिए व्यायाम

घुटनों के दर्द में अत्यंत लाभ हो, उसके लिए व्यायाम की विधि इस प्रकार है। इस व्यायाम को प्रातःकाल खाली पेट करना चाहिए अथवा भोजन के तीन घण्टे के बाद करना चाहिए।

सर्व प्रथम पूर्व अथवा पश्चिम दिशा की ओर मुख करके खड़े रहें। दोनों पैर अत्यंत पास भी न रखें और अत्यंत दूर भी न रखें। अब दोनों पैरों के पंजों को उत्तर दक्षिण दिशा की ओर रखें। हाथ ऊपर आकाश की ओर सीधे रखें। इसी स्थिति में खड़े रहकर धीरे धीरे बैठते जायें।

अत्यंत दर्द होता हो फिर भी नीचे बैठना जितना संभव हो उतना बैठने का प्रयत्न जरूर करें। किन्तु एकदम नीचे न बैठ जायें। फिर धीरे-धीरे खड़े हों। इस प्रकार सात-आठ बार नीचे बैठने और फिर खड़े होने का प्रयत्न करें।

घुटनों के दर्द के कारण जो लोग पद्मासन या सिद्धासन में निरंतर नहीं बैठ सकते उनके लिए यह व्यायाम लाभदायक है।

जोड़ों के वात में जिसे अंग्रेजी में 'ओस्टियोआर्थराटीस' कहते हैं उसमें यह कसरत लाभदायक है।

जोड़ों के दर्द में मुख्य कारण मटर, चने और चने की दाल, तुअर की दाल जैसे कठोर और आलू की सब्जी, बासी भोजन मुख्य हैं।

अत्यंत गीली, ठंडी जगह पर रहने से, ठंडी हवा लगने से जोड़ों का दर्द बढ़ता है।

रेती का सेंक, गरम कपड़े का सेंक, होट वाटर बैग का सेंक इसमें लाभप्रद हैं।

सावधानीः जोड़ों के दर्द वाले मरीज को कभी भी किसी योग्य वैद्य की सलाह के बिना तेल की मालिश नहीं करवानी चाहिए। क्योंकि यदि जठराग्नि बिगड़ी हुई हो, कच्चा आम शरीर में किसी भाग में जमा हो ऐसी स्थिति में तेल की मालिश करने से हानि होती है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सदगुरू-महिमा

जिसके पास गुरूकृपा रूपी धन है वह सम्राटों का सम्राट है। जो गुरूदेव की छत्रछाया के नीचे आ गये हैं, उनके जीवन चमक उठते हैं। गुरूदेव ऐसे साथी हैं जो शिष्य के आत्मज्ञान के पथ पर आनेवाली तमाम बाधाओं को काट-छाँटकर उसे ऐसे पद पर पहुँचा देते हैं जहाँ पहुँचकर फिर वह विचलित नहीं होता।

गुरू ज्ञान देते हैं, प्रसन्नता देते हैं.... साहस, सुख, बल और जीवन की दिशा देते हैं।

हारे हुए को हिम्मत से भर दें, हताश में आशा-उत्साह का संचार कर दें, मनमुख को मधुर मुस्कान से मुदित बना दें, उलझे हुए को सुलझा दें एवं जन्म-मरण के चक्कर में फँसे हुए मानव को मुक्ति का अनुभव करा दें वे ही सच्चे सदगुरू हैं।

सदगुरू की वाणी अमृत है। उनकी पूजा ईश्वर की पूजा है। उनके आशीर्वाद में वह ताकत होती है कि.....

जो बात दवा भी न कर सके, वह बात दुआ से होती है।
जब कामिल मुर्शिद मिलते हैं, तो बात खुदा से होती है।।

मानव तो आते वक्त भी रोता है, जाते वक्त भी रोता है। जब रोने का वक्त नहीं होता तब भी रोता रहता है। एक सदगुरू में ही वह ताकत है कि, जो जन्म-मरण के मूल अज्ञान को काटकर मनुष्य को रोने से बचा सकते हैं।

वे ही गुरू हैं जो आसूदा-ए-मंजिल कर दें।
वरना रास्ता तो हर शख्श बता देता है।।

उँगली पकड़कर, कदम-से-कदम मिलाकर, अंधकारमय गलियों से बाहर निकालकर लक्ष्य तक पहुँचाने वाले सदगुरू ही होते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

'फासला बहुत कम है......'

बहुत से रास्ते यूँ तो दिल की तरफ जाते हैं।
राहे मोहब्बत से आओ तो फासला बहुत कम है।

परमात्मा से मिलने की तड़प हो तो परमात्मा का मिलना असंभव नहीं है। इसके लिए पुरानी आदतों से लड़ना पड़ेगा, ऐहिक संसार के आकर्षणों से बचना पड़ेगा। फिर तो रिद्धि-सिद्धि और वाक्सिद्धि की प्राप्ति होगी, मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। घटनाओं का पूर्वाभास होने लगेगा, दुर्लभ वस्तुएँ सुलभ होने लगेंगे, धन-सम्पत्ति, मान-सम्मान आदि मिलने लगेंगे। ये सब सिद्धियाँ इन्द्रदेव के प्रलोभन हैं।

व्यर्थ की निन्दा से भयभीत न हुए तो खूब प्रशंसा मिलेगी। उसमें भी न उलझे तो प्रियतम परमात्मा की पूर्णता का साक्षात्कार हो जायेगा। तुम्हारी प्रज्ञा सत्यस्वरूप ईश्वर में प्रतिष्ठित हो जाने दो एक बार, फिर तो सारे झमेले.... रिद्धि-सिद्धि, यश-अपयश, निंदा-प्रशंसा, प्रतिकूलता-अनुकूलता सब खिलवाड़ मात्र लगेंगे। अभी से कर लो निर्णय की 'पाना है तो परमात्मा को पाना है। कहीं नहीं फँसना है। कहीं नहीं रूकना है।'

समय मत गँवाओ। व्यर्थ की वस्तुओं में फँसकर जीवन व्यर्थ मत करो। सार्थक सत्यस्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए कमर कसो। भगवान श्रीकृष्ण कहते है-

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।

'जो नित्य युक्त योगी है, उनके लिए मैं सुलभ हूँ।'

(पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ